

पदार्थ विज्ञान

प्रवचनसार गाथा ९९ से १०१ पर हुए
श्री कानजीस्वामी के प्रवचन



सम्पादक :

अध्यात्म रत्नाकर पण्डित रतनचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.,
प्राचार्य, श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर जयपुर - ३०२०१५

फोन : (०१४१) २७०५५८१, २७०७४५८

प्रथम संस्करण	:	५,२००
(१२ अगस्त १९८९)		
द्वितीय संस्करण	:	३,०००
(१५ फरवरी, २००७)		

मूल्य : पाँच रुपये

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाईस गोदाम, जयपुर

प्रकाशकीय

(प्रथम संस्करण)

प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य कुन्दकुन्द के प्रवचनसार परमागम की ९९ से १०१ तक तीन गाथाओं पर हुए सत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के प्रवचनों का संकलन एवं सम्पादन किया गया है। उपर्युक्त गाथाओं के प्रस्तुत प्रवचनों में जैनधर्म के मूलभूत सिद्धान्त उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा पदार्थविज्ञान विश्वव्यवस्था और वस्तुस्वातंत्र्य का विशद विवेचन हुआ है। वस्तुव्यवस्था को यथार्थ समझने पर परद्रव्य के कर्तृत्व की मिथ्या मान्यता का समूल छेदन-भेदन करने के लिए यह अनुपम कृति है।

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी समारोह के इस मंगलमय अवसर पर कुन्दकुन्दाचार्य के सत्साहित्य का जितना भी अधिकतम प्रचार-प्रसार हो सके, अवश्य होना चाहिए।

यह भी हमारा परमसौभाग्य ही कहा जायगा कि नाना मत और परस्पर भिन्न-भिन्न विचार रखनेवाली सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज आचार्य कुन्दकुन्द के द्विसहस्राब्दी समारोह को मनाने में एकमत है और अपने-अपने स्तर पर सभी सक्रिय हैं।

इस अवसर पर जहाँ पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने कुन्दकुन्द शतक, आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार, आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम जैसी कृतियाँ प्रकाशित कर एवं जैनपथ प्रदर्शक समिति ने आचार्य कुन्दकुन्द विशेषांक एवं समयसार विशेषांक जैसे वृहदाकार विशेषांक एवं मनीषियों की दृष्टि में समयसार जैसी कृतियाँ प्रकाशित कर कुन्दकुन्द के प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित की है, वहीं अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन ने स्थानीय स्तरों पर अनेक छुट-पुट कार्यक्रमों के साथ केन्द्र द्वारा संचालित कुन्दकुन्द ज्ञानचक्र के माध्यम से भी कुन्दकुन्द के तत्त्वज्ञान की अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हो रही है।

इन सब अभिनन्दनीय कार्यों के लिए कार्यकर्ताओं को जितना भी धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है। कुन्दकुन्दवाणी का इसी प्रकार प्रचार-प्रसार होता रहे, बस यही मंगलकामना है।

— नेमीचन्द पाटनी

महामंत्री, टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर (राज.)

प्रकाशकीय

(द्वितीय संस्करण)

आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के प्रवचनसार परमागम की गाथा ९९, १०० व १०१ पर हुए प्रवचनों का संकलन 'पदार्थ विज्ञान' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता है।

उपर्युक्त गाथाओं के प्रस्तुत प्रवचनों में जैनधर्म के मूलभूत सिद्धान्त उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा पदार्थविज्ञान विश्वव्यवस्था और वस्तुस्वातंत्र्य का विशद विवेचन हुआ है। वस्तुव्यवस्था को यथार्थ समझने पर परद्रव्य के कर्तृत्व की मिथ्या मान्यता का समूल छेदन-भेदन करने के लिए यह अनुपम कृति है।

तात्कालिक परिस्थितियों की जानकारी हेतु प्रथम संस्करण का प्रकाशकीय भी यथावत पुनः दिया है।

शुद्धात्मा के प्रतिपादक ग्रन्थाधिराज समयसार के मर्म समझने हेतु प्रवचनसार का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है, अतः समयसार के रसिकों से भी निवेदन है कि वे इस 'पदार्थ-विज्ञान' का बारीकी से अध्ययन करें तथा इस सम्बन्ध में अपने अभिप्राय जरूर भेजें।

वैसे प्रवचनसार के समग्र विषय को स्पष्ट समझने के लिए पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनसार पर हुए प्रवचनों का संकलन 'दिव्यध्वनिसार' नाम से उपलब्ध है। साथ ही डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत प्रवचनसार अनुशीलन व प्रवचनसार का सार भी उपलब्ध है। दोनों के प्रवचनों की सी.डी. भी आप मँगवा सकते हैं।

इस कृति के सम्पादन हेतु पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल को अनेकशः धन्यवाद! मुख पृष्ठ को तात्त्विक चित्र से आकर्षक बनाने तथा प्रिन्टिंग-बाइण्डिंग में श्री अखिल बंसल का और टाईप सैटिंग में श्री कैलाशचन्द्र शर्मा का सहयोग रहा है, अतः हम उनके भी आभारी हैं। इस पुस्तक को अल्पमूल्य में आपके पास पहुँचाने में सहयोग देने वाले दातारों को भी हार्दिक बधाई!

— ब्र. यशपाल जैन, एम.ए.

प्रकाशनमंत्री, टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर (राज.)

प्रस्तावना

जैन-मान्यतानुसार यह विश्व अनादिनिधन है। न तो इसे किसी ने बनाया है और न कोई इसका विनाश कर सकता है। लोक में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल - ये छह द्रव्य हैं। इन छहों द्रव्यों या पदार्थों को ही विश्व कहते हैं। द्रव्य या पदार्थ को परिभाषित करते हुए आचार्य उमास्वामी ने कहा है कि 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्' तथा 'गुणपर्ययवद् द्रव्यम्' अर्थात् स्वभाव को छोड़े बिना जो वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-संयुक्त है तथा गुण-पर्यायवान है, उसे द्रव्य कहते हैं। ये छहों द्रव्य लोक में अनादिकाल से हैं और अनंतकाल तक रहेंगे। जाति की अपेक्षा से छह हैं, पर संख्या की अपेक्षा देखा जाय तो जीव अनंत हैं, पुद्गल अनन्तानन्त हैं, धर्म, अधर्म व आकाश एक-एक द्रव्य हैं और कालद्रव्य असंख्य हैं। इन द्रव्यों के समूहरूप विश्व उत्पादस्वरूप होकर भी अनादि है और व्ययरूप होकर भी अनन्त।

आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार के ज्ञेयाधिकार में तो इनका प्रतिपादन किया ही है, पंचास्तिकायसंग्रह में भी इनका विस्तृत विवेचन किया है जो मूलतः पठनीय है, क्योंकि जिनागम में प्रतिपादित द्रव्य एवं पदार्थ व्यवस्था की जानकारी के बिना जिन-अध्यात्म में प्रवेश पाना एवं उसके रहस्यों को समझ पाना संभव नहीं है।

'धर्म' व 'अधर्म' शब्द वैसे तो सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, पुण्य-पाप एवं कर्तव्य-अकर्तव्य आदि अनेक अर्थों में भी प्रयुक्त होते हैं, परन्तु इस प्रकरण में इन शब्दों की अपनी स्वतंत्र व्याख्या है। यहाँ ये पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त हैं। जो स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गलों के गमन में निमित्त बनता है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं तथा जो स्वयं स्थित होते हुए जीव और पुद्गलों की स्थिति में निमित्त बनता है उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं।

जीवद्रव्य के सिवाय उपर्युक्त पाँचों द्रव्य-पदार्थ अजीव हैं, उनमें ज्ञान-दर्शन-सुख आदि नहीं हैं। जिनमें ज्ञान-दर्शन-सुख पाये जायें वे जीव हैं तथा

जिनमें ज्ञान-दर्शनरूप चेतना नहीं होती वे सब अजीव द्रव्य हैं। पुद्गल मूर्तिक है, शेष पाँचों द्रव्य-अमूर्तिक हैं। प्रदेशों की संख्या की अपेक्षा काल द्रव्य एकप्रदेशी है, शेष पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। जिनके बहुत प्रदेश होते हैं उन्हें कायवान कहा जाता है, इस अपेक्षा पाँचों द्रव्यों को पंचास्तिकाय भी कहते हैं।

ये छहों द्रव्य अपने स्वरूप में पूर्ण स्वतंत्र व स्वावलम्बी हैं। इनमें जीव और पुद्गल के सिवाय शेष चारों द्रव्य तो त्रिकाल पूर्ण, शुद्ध और अविकारी ही हैं; इनमें तो विकार होता ही नहीं है। पुद्गल-परमाणु भी शुद्ध ही हैं, पर जब दो या दो से अधिक परमाणु मिलकर या बिछुड़कर स्कन्ध बनते हैं तब वे विकारी होते हैं; परन्तु उनके विकृत होने से भी उन्हें कोई हानि-लाभ नहीं है; क्योंकि उनमें सुख-दुख का अभाव है। एक जीव ही ऐसा है, जो अपनी अविकारी दशा में सुखी व विकारी दशा में दुःखी होता है और अनादिकाल से यह अपने स्वभाव, अपनी अनन्त शक्तियों से अपरिचित है। यही इसके दुःख का मूल है, अतः कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रवचनसार की गाथा सं. ९९ से १०१ तक तीन गाथाओं में उपर्युक्त छहों द्रव्यों में प्रतिसमय होनेवाले उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के स्वरूप की जानकारी दी है। वस्तुस्वरूप की इतनी सूक्ष्म व्याख्या जिनागम के सिवाय अन्यत्र तो कहीं है ही नहीं, जिनागम में भी प्रवचनसार के सिवाय अन्यत्र दुर्लभ है। हाँ; तत्त्वार्थसूत्र, सवार्थसिद्धि एवं राजवार्तिक में भी इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। यह जिनागम का अद्भुत सिद्धान्त है। इसी पर विश्व की व्यवस्था निर्भर है। जिसने इसे नहीं जाना उसने जिनागम को ही नहीं जाना - ऐसा माना जायगा। एतदर्थ जैनदर्शन के प्राणभूत इस सैद्धान्तिक विषय की चर्चा अत्यन्त आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है, क्योंकि वस्तु-व्यवस्था को समझे बिना धर्म का, मोक्षमार्ग का प्रारम्भ ही नहीं होता।

देखो, आत्मा की पवित्र पर्याय का प्रकट होना ही तो धर्म की प्राप्ति है। इस दृष्टि से धर्म आत्मा की ही पर्याय है, जो आत्मा में ही होती है। आत्मा का

धर्म आत्मा से ही होता है, न पर में होता है और न पर से होता है तथा पर्याय का धर्म पर्याय में से नहीं होता, द्रव्य में से होता है। धर्म तो पर्याय में ही प्रकट होता है, किन्तु पर्याय के सन्मुख देखने या पर्याय का आश्रय करने से नहीं, बल्कि स्वद्रव्य की सन्मुखता से स्वपर्याय में होता है। पर का तो आत्मा में सर्वथा अभाव ही है, अतः पर के आश्रय व परसन्मुख देखने में धर्म प्रकट नहीं होता।

जिसे धर्म करना है व अधर्म को दूर करना है और धर्ममय होकर सदा सुखी रहना है, उसे अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप को समझकर अपने ध्रुव-स्वभाव अखण्ड आत्मद्रव्य पर दृष्टि ले जाना चाहिए। आत्मा में धर्मरूप नवीन पर्याय का उत्पाद, अधर्मरूप पूर्व-पर्याय का व्यय और ध्रौव्यमय होकर सदा सुखी रहने में अखण्ड-प्रवाह रूप आत्मा के स्वभाव का आश्रय स्वतः आ जाता है।

इसप्रकार धर्म करने की भावना में वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव की स्वीकृति आ जाती है। यदि वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हो तो अधर्म दूर होकर धर्म की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती और न आत्मा सदा अपने में स्थित रहकर सुखी हो सकता है। इसलिए धर्म करने वाले को वस्तु में प्रतिसमय होनेवाले उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव की प्रतीति होना ही चाहिए। एतदर्थ प्रवचनसार की उपर्युक्त गाथाओं पर हुए सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का प्रकाशन अत्यन्त उपयोगी होगा। यह जानकर वर्षों पूर्व हुए इन प्रवचनों का संकलन एवं संपादन करने का यह लघु प्रयास किया है। हमारे अनन्य साथी बालब्रह्मचारी श्री यशपालजी की पावन प्रेरणा इसके पुनः प्रकाशन में विशेष कार्यकारी रही है।

आशा है पाठकगण इस कृति को भी अन्य कृतियों की भाँति अपनाकर हमारा श्रम सार्थक करेंगे।

- पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची :-

१. श्री भँवरलालजी गंगवाल एवं मणिप्रभा जैन, जयपुर	८५०.००
२. श्री भादूजी परिवार बालाजीनगर, इन्दौर	७००.००
३. श्री महेन्द्र ए. शाह फाउण्ड्री मैग्जीन, इन्दौर	५११.००
४. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. विमलकुमारजी जैन, 'नीरु केमिकल्स', दिल्ली	५०१.००
५. श्री सुन्दरलाल पुत्र श्री मानिकचन्दजी जैन, विनौता	५०१.००
६. श्री अतुल रतनलालजी दोशी, ठाणे	५०१.००
७. श्री यश सुहास मोहिरे, बेलगाँव	५०१.००
८. एक मुमुक्षु बेन, बोरीवली, मुम्बई	५०१.००
९. श्री राजकुमारजी कासलीवाल, इन्दौर	५०१.००
१०. श्री दिलीपकुमारजी पाटोदी, इन्दौर	५०१.००
११. श्री चन्द्रप्रकाशजी सोनी, इन्दौर	५००.००
१२. श्री सुमनभाई भूरे, हिंगोली	५००.००
१३. श्रीमती वन्दना संजयकुमारजी मोदी, इन्दौर	५००.००
१४. श्री दुलीचन्दजी जैन, सोगानी, इन्दौर	५००.००
१५. श्री विजयजी पाटोदी, रतलाम	५००.००
१६. श्री शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	२५१.००
१७. श्रीमती रश्मिदेवी वीरेशजी कासलीवाल, सूरत	२५१.००
१८. ब्र. कुसुमताई पाटील, कुम्भोज	२५१.००
१९. श्रीमती श्रीकान्ताबाई ध.प. श्री पूनमचन्दजी छाबड़ा, इन्दौर	२०१.००
२०. श्रीमती नीलू ध.प. राजेशकुमार मनोहरलालजी काला, इन्दौर	२०१.००
२१. श्रीमती पानादेवी मोहनलालजी सेठी, गोहाटी	१५१.००
२२. स्व. धापूदेवी ध.प. स्व. ताराचन्दजी गंगवाल जयपुर की पुण्य स्मृति में	१५१.००
कुल राशि	९,५२५.००

पदार्थ-विज्ञान

प्रवचनसार-गाथा ९९

सदवद्विदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो ।

अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो ॥

सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यस्य यो हि परिणामः ।

अर्थेषु स स्वभावः स्थितिसंभवाशसंबद्धः ॥

अन्वयार्थ :- (स्वभावे) स्वभाव में (अवस्थितं) अवस्थित होने से (द्रव्यं) द्रव्य (सत्) सत् है, (द्रव्यस्य) द्रव्य का (यः हि) जो (स्थितिसंभव-नाशसंबद्ध) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित (परिणाम) परिणाम है (सः) वह (अर्थेषु स्वभावः) पदार्थों का स्वभाव है ।

टीका :- स्वभाव में नित्य अवस्थित होने से द्रव्य 'सत्' है । स्वभाव द्रव्य का ध्रौव्य-उत्पाद-विनाश की एकतास्वरूप परिणाम है ।

जैसे द्रव्य का वास्तु^१ समग्रपने (अखण्डता द्वारा) एक होने पर भी, विस्तारक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं वे प्रदेश हैं; इसीप्रकार द्रव्य की वृत्ति^२ समग्रपने द्वारा एक होने पर भी, प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं वे परिणाम हैं । जैसे विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है, उसीप्रकार प्रवाहक्रम का कारण परिणामों का परस्पर व्यतिरेक^३ हैं ।

१. द्रव्य का वास्तु-द्रव्य का स्व-विस्तार, द्रव्य का स्व-क्षेत्र, द्रव्य का स्व-आकार, द्रव्य का स्व-दल ।

२. वृत्ति-वर्तना, होना, अस्तित्व ।

३. व्यतिरेक - भेद, (भिन्नता, पृथकता) एक का दूसरे में अभाव । एक परिणाम दूसरे परिणामस्वरूप नहीं है, इसलिए द्रव्य के प्रवाह में क्रम है ।

जैसे वे प्रदेश अपने स्थान में स्वरूप से उत्पन्न और पूर्वरूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं; उसीप्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्वरूप से उत्पन्न और पूर्वरूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक-प्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं और जैसे वास्तु का जो छोटे से छोटा अंश पूर्वप्रदेश के विनाश-स्वरूप है वही (अंश) उसके बाद के प्रदेश का उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुभयस्वरूप है (अर्थात् दो में से एक भी स्वरूप नहीं है); इसीप्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश पूर्वपरिणाम के विनाशस्वरूप है, वही उसके बाद के परिणाम के उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एकप्रवाहपने द्वारा अनुभयस्वरूप है।

इसप्रकार स्वभाव से ही विलक्षण परिणामपद्धति में (परिणामों की परम्परा में) प्रवर्तमान द्रव्य स्वभाव का अतिक्रम नहीं करता इसलिये सत्त्व को त्रिलक्षण ही अनुमोदना चाहिये - मोतियों के हार की भाँति।

जैसे :- जिसने (अमुक) लम्बाई ग्रहण की है - ऐसे लटकते हुए मोतियों के हार में, अपने-अपने स्थानों से प्रकाशित होते हुए समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होते हैं इसलिये, और पहले-पहले के मोती प्रगट नहीं होते इसलिये, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति का रचयिता सूत्र अवस्थित होने से त्रिलक्षणत्व प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। इसीप्रकार जिसने नित्यवृत्ति ग्रहण की है - ऐसे रचित (परिणमित) द्रव्य में अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित (प्रकट) होते हुए समस्त परिणामों में पीछे-पीछे के अवसरों पर पीछे-पीछे के परिणाम प्रगट होते हैं इसलिये, और पहले-पहले के परिणाम नहीं प्रगट होते हैं इसलिये, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचनेवाला प्रवाह अवस्थित होने से त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि को प्राप्त होता है।

भावार्थ :- प्रत्येक द्रव्य स्वभाव में रहता है इसलिये 'सत्' है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है। जैसे द्रव्य के विस्तार का छोटे से छोटा अंश प्रदेश है, उसीप्रकार द्रव्य के प्रवाह का छोटे से छोटा अंश परिणाम है। प्रत्येक परिणाम में अपने रूप से उत्पन्न होता है, पूर्वरूप से नष्ट होता है और सर्व परिणामों में एकप्रवाहपना होने से प्रत्येक परिणाम उत्पाद-विनाश से रहित एकरूप-ध्रुव रहता है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में समय-भेद नहीं है, तीनों ही एक ही समय में हैं। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणामों की परम्परा में द्रव्य अपने स्वभाव से विद्यमान रहता है; इसलिये द्रव्य स्वयं भी, मोतियों के हार की भाँति, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है ॥१९॥

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने पर द्रव्य 'सत्' है

अपने सुभावपरनति विषे सदाकाल,
तिष्ठतु है सत्तारूप वस्तु सोई दर्व है।
द्रव्य को जो गुणपरजाय विषे परिणाम,
निश्चकरि ताही को स्वभाव नाम सर्व है ॥
सोई ध्रुव-उत्पाद-व्यय इन भावनितै,
सदा सनबंधजुत राजत सुपर्व है।
ऐसी एकताई कुन्दकुन्दजी बताई 'वृन्द'
वन्दतु है तिन्हें सदा त्यागि उर गर्व है ॥
जैसे परदेशनि को त्रिधारूप सिद्ध करी,
तैसे परिणामहू को ऐसे भेद कहा है।
पहिले समै के परिणाम उतपादरूप,
पीछे की अपेच्छा सोई वयभाव गहा है ॥
सदा एक दर्व के आधार परवाह बहै,
तातैं द्रव्य द्वारत सो ध्रौव्य सरदहा है।
ऐसे उतपाद-व्यय-ध्रुवरूप परिणाम,
दर्व को सुभाव निरुपाध सिद्ध लहा है ॥

- श्री प्रवचनसार-परमागम, चतुर्थ अधिकार : वृन्दावनदास

गाथा ९९ पर प्रवचन

प्रवचनसार की यह गाथा अलौकिक है। इस गाथा में आचार्यदेव ने वस्तुस्वभाव का रहस्य भर दिया है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त परिणाम द्रव्य का स्वभाव है और उस स्वभाव में द्रव्य नित्य अवस्थित है, इसलिए द्रव्य 'सत्' है।

यहाँ द्रव्य के समय-समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाने के लिए आचार्यदेव द्रव्य के असंख्यप्रदेशी क्षेत्र का उदाहरण देते हैं। जिस प्रकार द्रव्य को संपूर्ण विस्तार क्षेत्ररूप से लक्ष्य में लिया जाये तो उसका वास्तु (क्षेत्र) एक है, उसीप्रकार संपूर्ण द्रव्य के तीनों काल के समय-समय के परिणामों को एक साथ लक्ष्य में लिया जाये तो उसकी वृत्ति एक है। जिसप्रकार क्षेत्र में प्रदेशक्रम का अंश प्रदेश है, उसीप्रकार द्रव्य के प्रवाहक्रम का अंश परिणाम है।

देखो, यह प्रवचनसार का ज्ञेय अधिकार है; अतः यहाँ कहा है कि समस्त ज्ञेय सत् है और समस्त ज्ञेय जैसे हैं, वैसे एक साथ ज्ञान में ज्ञात होते हैं। आत्मा ज्ञान का सागर है और समस्त लोक ज्ञेयों का सागर है तथा दोनों में मात्र ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, कर्त्ता-कर्म या भोक्ता-भोग्य सम्बन्ध नहीं है। बस इसी में से वीतरागता निकलती है, क्योंकि मात्र ज्ञेय-ज्ञायक संबंधों में फेरफार करने-कराने की बुद्धि नहीं होती। देखो, आचार्यदेव ने प्रत्येक गाथा में वीतरागता के बीज बोए हैं, अतः सभी गाथाओं में से वीतरागता निकलती है।

समयसार के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में भी यही कहा है कि द्रव्य अपने क्रमबद्ध परिणाम से उत्पन्न होता है। यह बात कहकर वहाँ सम्यग्दर्शन का सम्पूर्ण विषय बतलाया है, द्रव्यदृष्टि कराई है। यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है, अतः समस्त द्रव्य परिणामन-स्वभाव में स्थित हैं - ऐसा कहकर पूर्ण

ज्ञान और पूर्ण ज्ञेय बतलाये हैं। ऐसे सर्व ज्ञेयों के स्वभाव को और उन्हें जानने वाले ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा करना ही तो सम्यग्दर्शन है।

प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु और धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य पृथक्-पृथक् स्वयंसिद्ध पदार्थ हैं। सामान्यतया देखने पर प्रत्येक द्रव्य का क्षेत्र अखण्ड है; एक है, तथापि उस क्षेत्र के विस्तार का जो सूक्ष्म अंश है, वह प्रदेश है। छह द्रव्यों में से परमाणु और काल का क्षेत्र एकप्रदेशी ही है तथा आत्मा का क्षेत्र असंख्यातप्रदेशी है। वह समग्र रूप से एक होने पर भी उसका अंतिम अंश प्रदेश है। इसप्रकार यहाँ क्षेत्र का दृष्टान्त है और वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणामों को समझाना सिद्धांत है। जिसप्रकार असंख्यप्रदेशी विस्तार को एकसाथ लेने से द्रव्य का क्षेत्र एक है, उसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य की अनादि-अनंत परिणामनधारा समग्र रूप से एक है। तथा उस सम्पूर्ण प्रवाह का छोटे से छोटा एक अंश परिणाम है। प्रत्येक परिणाम को पृथक् किये बिना समग्ररूप से द्रव्य के अनादि-अनंत प्रवाह को देखने पर वह एक है। अनादि निगोद से लेकर अनंत सिद्धदशा तक द्रव्य का परिणामन-प्रवाह एक ही है। जिसप्रकार द्रव्य का सम्पूर्ण क्षेत्र एक साथ फैला है, उसे प्रदेशभेद से न देखा जाये तो उसका क्षेत्र एक ही है; उसी प्रकार त्रिकाली द्रव्य के प्रवाह में परिणाम का भेद न किया जाये तो संपूर्ण प्रवाह एक ही है और उस त्रैकालिक प्रवाहक्रम का प्रत्येक अंश परिणाम है।

यहाँ प्रदेशों का विस्तारक्रम क्षेत्र-अपेक्षा से है और परिणामों का प्रवाहक्रम परिणामन-अपेक्षा से है। यहाँ क्षेत्र का दृष्टांत देकर आचार्यदेव परिणामों का स्वरूप समझाना चाहते हैं।

यह ज्ञान में ज्ञात होने योग्य ज्ञेय पदार्थों का वर्णन है। यद्यपि बात सूक्ष्म है, तथापि भाई! यह सब ज्ञेय है। अतः ज्ञान में अवश्य ज्ञात हो सकते हैं और तेरा ज्ञानस्वभाव समस्त ज्ञेयों को जान सकता है। आत्मा ज्ञाता है और स्वयं स्वज्ञेय भी है, तथा अन्य जीव-पुद्गलादि परज्ञेय हैं।

धर्मास्तिकाय आदि के असंख्यप्रदेश ऐसे के ऐसे बिछे - फैले हुए हैं, आकाश के अनंत प्रदेश ऐसे के ऐसे बिछे - फैले हुए हैं, उनमें कभी एक भी प्रदेश का क्रम आगे-पीछे नहीं होता, उसीप्रकार द्रव्य का अनादि-अनंत प्रवाहक्रम भी कभी खण्डित नहीं होता। 'प्रवाहक्रम' कहकर आचार्यदेव ने अनादि-अनंत ज्ञेयों को एकसाथ व्यवस्थित बतला दिया है। 'प्रवाहक्रम' कहने से समस्त परिणामों का क्रम व्यवस्थित ही है, कोई भी परिणाम - कोई भी पर्याय आगे-पीछे नहीं होते। इस प्रतीति में ही द्रव्यदृष्टि और वीतरागता है।

समय-समय के परिणामों का एकदम सूक्ष्म सिद्धान्त समझाने के लिए प्रदेशों का उदाहरण दिया है। यद्यपि वह भी सूक्ष्म मालूम होता है, परन्तु परिणाम की अपेक्षा तो स्थूल ही है। यदि अपने लक्ष्य में वस्तु का स्वरूप आ जाये तो समझ में आना कठिन नहीं है। जीने (सीढ़ी) का दृष्टान्त देते हुए कहते हैं कि जिसप्रकार क्षेत्र से देखने पर पूरा जीना ऐसे का ऐसा स्थित है; उसका छोटा अंश प्रदेश है, और जीने की लम्बाई से देखने पर एक के बाद एक सीढ़ियों का प्रवाह है, पूरे जीने का प्रवाह एक है, उसकी एक-एक सीढ़ी उसके प्रवाह का अंश है, उन सीढ़ियों के प्रवाह का क्रम टूटता नहीं, दो सीढ़ियों के बीच में भी छोटे-छोटे भाग किये जायें तो अनेक भाग होते हैं, उस चढ़ते हुए प्रत्येक सूक्ष्म भाग को परिणाम समझना चाहिए। उसीप्रकार आत्मा असंख्य प्रदेशों में फैला हुआ एक है और उसके क्षेत्र का प्रत्येक अंश प्रदेश है। तथा सम्पूर्ण द्रव्य का अस्तित्व अनादि-अनंत प्रवाहरूप से एक है और उस प्रवाह का प्रत्येक समय का अंश परिणाम है। उन परिणामों का प्रवाहक्रम जीने की सीढ़ियों की भाँति क्रमबद्ध है। परिणामों का वह प्रवाहक्रम आगे-पीछे नहीं होता, इसलिये सब कुछ जैसा है वैसा जानना ही आत्मा का स्वभाव है। वस्तु जैसी हो वैसी न मानकर उसे अन्य प्रकार से माने तो वे ज्ञान व श्रद्धा दोनों सच्चे नहीं हैं।

अब उन परिणामों का एक-दूसरे में अभाव बतलाते हैं। जिसप्रकार विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है, उसीप्रकार प्रवाहक्रम का कारण परिणामों का परस्पर व्यतिरेक है।

द्रव्य में विस्तारक्रम (क्षेत्र-अपेक्षा से विस्तार का कारण) प्रदेशों का परस्पर भिन्नत्व है। पहले प्रदेश का दूसरे में अभाव - इसप्रकार प्रदेशों के भिन्न-भिन्नपने के कारण विस्तारक्रम रचा हुआ है। यदि एक-दूसरे में अभाव न हो और एक प्रदेश दूसरे में भी भावरूप से वर्तता हो, सब मिलकर एक ही प्रदेश हो, तो द्रव्य का विस्तार ही न हो, द्रव्य एकप्रदेशी ही हो जाये। इसलिए विस्तार क्रम कहने से ही प्रदेश एक-दूसरे के रूप में नहीं है - ऐसा आ जाता है। 'विस्तारक्रम' अनेकता का सूचक है, क्योंकि एक में क्रम नहीं होता। सब में एकता न हो, किन्तु भिन्नता हो, तभी अनेकता निश्चित होती है और अनेकता हो, तभी विस्तारक्रम होता है; इसलिए विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों की परस्पर भिन्नता है।

इसीप्रकार अब विस्तारक्रम की भाँति प्रवाहक्रम का स्वरूप कहा जाता है। 'प्रवाहक्रम' कहते ही परिणामों की अनेकता सिद्ध होती है और 'परिणामों की अनेकता' कहते ही एक का दूसरे में अभाव सिद्ध होता है, क्योंकि एक का दूसरे में अभाव हो तभी अनेकता हो। यदि ऐसा न हो तो सब एक ही हो जाये। विस्तारक्रम में जिसप्रकार एक प्रदेश का दूसरे में अभाव है, उसीप्रकार प्रवाहक्रम में एक परिणाम का दूसरे में अभाव है। इसप्रकार परिणामों में परस्पर एक का दूसरे में अभाव होने से अनादि-अनंत प्रवाहक्रम रचा हुआ है। ऐसा द्रव्य का स्वभाव है। ऐसे परिणामस्वभाव में द्रव्य स्थित है।

यहाँ विस्तारक्रम तो दृष्टान्तरूप है और प्रवाहक्रम सिद्धान्तरूप है। दृष्टान्त सर्वप्रकार से लागू नहीं होता। पुद्गल और कालद्रव्य का विस्तार तो एकप्रदेशी ही है, इसलिये उसमें प्रदेशों के परस्पर व्यतिरेक का दृष्टान्त

लागू नहीं होता, किन्तु प्रवाहक्रम का जो सिद्धान्त है, वह समस्त द्रव्यों में समान रीति से लागू होता है।

प्रदेशों के विस्तारक्रम की भाँति द्रव्य का अनादि-अनंत लम्बा प्रवाहक्रम होता है और यह प्रवाहक्रम तभी सम्भव है जबकि एक परिणाम का दूसरे परिणाम में अभाव हो। पहला परिणाम दूसरे परिणाम में नहीं है, दूसरा तीसरे में नहीं है – इसप्रकार परिणामों में व्यतिरेक होने से द्रव्य में प्रवाहक्रम है। द्रव्य के अनादि-अनंत प्रवाह में एक के बाद एक परिणाम क्रमशः होते रहते हैं। ऐसे ये समस्त द्रव्य मात्र ज्ञेय हैं। इन ज्ञेय द्रव्यों की यथावत् प्रतीति करने से श्रद्धा में जो निर्विकल्पता और वीतरागता होती है, वही एक मात्र यथार्थ मोक्ष का मार्ग है।

अहो! जहाँ एक ही द्रव्य के एक परिणाम में दूसरे परिणाम का भी अभाव है, वहाँ एक द्रव्य की अवस्था में दूसरा द्रव्य कुछ करे – यह बात ही कहाँ रहती है? एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में कुछ करता है अथवा एक द्रव्य के क्रमपरिणामों में परिवर्तन किया जा सकता है – ऐसा जो मानता है उसे ज्ञेयतत्त्व की खबर नहीं है।

कोई ऐसा माने कि मैंने अपनी बुद्धि से पैसा कमाया तो उसकी मान्यता मिथ्या है, क्योंकि बुद्धि का जो परिणाम हुआ वह आत्मा के प्रवाहक्रम में आया हुआ परिणाम है और जो पैसा आया वह पुद्गल के प्रवाहक्रम में आया हुआ पुद्गल का परिणाम है। दोनों द्रव्य अपने-अपने प्रवाहक्रम में भिन्न-भिन्न रूप से वर्त रहे हैं। आत्मा अपने परिणाम-प्रवाह में स्थित है और जड़पदार्थ जड़ के परिणाम-प्रवाह में स्थित है। दोनों पदार्थों का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। जिसने पदार्थों का ऐसा स्वरूप जाना कि 'मैं पर में कुछ फेरफार नहीं करता हूँ या पर के कारण मुझमें कुछ फेरफार नहीं होता है' – उसके मिथ्याबुद्धि दूर हो गई, इसलिये वह समस्त द्रव्यों का ज्ञाता रह गया। जिसप्रकार केवली भगवान वीतरागरूप

से सबके ज्ञाता हैं, उसीप्रकार यह भी ज्ञाता ही है। अभी साधक हैं, इसलिये अस्थिरता से राग-द्वेष होते हैं, किन्तु वे भी ज्ञाता का ज्ञेय है। ज्ञान और राग की एकतापूर्वक राग-द्वेष नहीं होते, किन्तु ज्ञान के ज्ञेयरूप से राग-द्वेष होते हैं। इसलिये अभिप्राय से तो वह साधक भी पूर्ण ज्ञाता ही है।

यथार्थ वस्तुस्वरूप को जानने से स्वयं छहों द्रव्यों का ज्ञाता हो गया और छहों द्रव्य ज्ञान में ज्ञेय हुए। इसप्रकार स्वयं एक ज्ञाता और छहों द्रव्य ज्ञेय- ऐसा ज्ञातापना बतलाने के लिये 'स्वात्मानुभवमनन' में कहा है कि आत्मा सप्तम द्रव्य हो जाता है।

आत्मा में केवलज्ञान का सारा दल और उसके सामने लोकालोकरूप सम्पूर्ण ज्ञेयों का दल; बस ज्ञेय-ज्ञायक स्वभाव रह गया। ज्ञेय-ज्ञायकपने में राग-द्वेष या फेरफार करना कहाँ रहा? अहो! ऐसे ज्ञायक स्वभाव का स्वीकार तो कर! इसकी स्वीकृति में वीतरागी श्रद्धा है और उसी में वीतरागता तथा केवलज्ञान के बीज हैं।

इस उपर्युक्त कथन में दो बातें हुई हैं :-

(१) प्रथम तो, क्षेत्र के दृष्टान्त से द्रव्य के अनादि-अनंत प्रवाह को एक समप्रवृत्ति बतलाई और उस प्रवाहक्रम के सूक्ष्म अंश को परिणाम कहकर द्रव्य को 'सत्' सिद्ध किया तथा उसमें अखण्ड अस्तित्व की अपेक्षा से एकत्व और परिणामों की अपेक्षा से अनेकत्व बताकर सत् में एकत्व-अनेकत्व भी सिद्ध किया।

(२) दूसरे, परिणामों का परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया।

इसप्रकार दो बातें सिद्ध कीं। अब उनका विस्तार करके उसमें से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निकालते हैं।

“जिसप्रकार वे प्रदेश अपने स्थान में स्वरूप से उत्पन्न और पूर्वरूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुपने द्वारा

अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं, उसीप्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्वरूप से उत्पन्न और पूर्वरूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एकप्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं।”

इसमें प्रदेशों की बात दृष्टान्तरूप और परिणामों की बात सिद्धान्त-रूप है।

पदार्थों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव है और उस स्वभाव में सदैव स्थित द्रव्य सत् है। प्रथम इतनी बात तो सिद्ध कर चुके हैं कि द्रव्य की वृत्ति अनादि-अनंत अखण्डरूप से एक होने पर भी, उसके प्रवाहक्रम का अंश परिणाम है। वे परिणाम एक-दूसरे में नहीं वर्तते, किन्तु उनका एक-दूसरे में अभाव है। उसमें से अब विस्तार करके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निकालते हैं। उसमें भी प्रथम क्षेत्र का दृष्टान्त देते हैं।

सम्पूर्ण द्रव्य के एक क्षेत्र को लें तो उसके प्रदेश उत्पत्ति-विनाश-रहित है और उन प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक होने से वे अपने-अपने स्वक्षेत्र में अपने से सत् और पूर्व-प्रदेशरूप से असत् हैं। वे प्रदेश अपने से उत्पादरूप है और पूर्व के प्रदेश की अपेक्षा से व्ययरूप हैं। इसप्रकार समस्त प्रदेश उत्पाद-व्यय-रूप हैं और सर्वप्रदेशों का विस्तार साथ में लेने से द्रव्य के सभी प्रदेश ध्रौव्यरूप हैं। इसप्रकार समस्त प्रदेश एकसमय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं।

यहाँ प्रदेशों के जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहे हैं, वे क्षेत्र-अपेक्षा से समझना। उक्त कथन के अनुसार समय-समय के परिणामों में भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है। अनादि-अनन्त एक-प्रवाह की अपेक्षा से परिणाम उत्पत्ति-विनाश-रहित ध्रुव हैं और वे परिणाम अपने-अपने स्वकाल में उत्पादरूप हैं तथा पूर्वपरिणाम की अपेक्षा से व्ययरूप हैं। इसप्रकार समस्त परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप हैं और ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप परिणाम

वस्तु का स्वभाव है।

यहाँ प्रथम समुच्चय क्षेत्र और समुच्चय परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध किये हैं। यद्यपि यह बात अकेले आत्मा की नहीं, अपितु समस्त द्रव्यों के स्वभाव की है।

जिसप्रकार आत्मा के असंख्य प्रदेशों में एक समय में क्षेत्र-अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लागू होता है, उसीप्रकार आत्मा के प्रवाहक्रम में वर्तने वाले समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में स्वरूप से उत्पन्न हैं, पूर्व-रूप से विनष्ट हैं और अखण्ड धारावाही प्रवाहरूप से वे उत्पन्न या विनष्ट नहीं हैं, इसलिये वे परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं।

देखो! अपने-अपने अवसर में समस्त परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य क्रमबद्ध कहकर पूर्ण त्रैकालिक द्रव्य को ज्ञेयरूप से सामने रख दिया है। सर्वज्ञ की और ज्ञानस्वभाव की प्रतीति के बिना किसीप्रकार यह बात भीतर नहीं जम सकती। इसकी प्रतीति में सम्यग्दर्शन है।

द्रव्य के समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में स्वरूप से उत्पन्न हैं, पूर्वरूप से विनष्ट हैं और एक अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से उत्पत्ति-विनाश रहित ध्रौव्य हैं।

यहाँ परिणामों का स्व-अवसर कहकर आचार्यदेव ने अद्भुत बात की है। जितने एक द्रव्य के परिणाम उतने ही तीन काल के समय और जितने तीन काल के समय उतने ही एक द्रव्य के परिणाम। बस! इतना निश्चित करें तो अपने ज्ञायकपने की प्रतीति हो जाये। द्रव्य के प्रत्येक परिणाम का अपना-अपना अवसर भिन्न है। तीनकाल के परिणाम एक साथ ज्ञेय हैं और आत्मा उनका ज्ञाता है। ऐसे ज्ञेय-ज्ञायकपने में राग नहीं रहा, अकेली वीतरागता ही आई। प्रथम ऐसी श्रद्धा करने से वीतरागी श्रद्धा होती है, पश्चात् ज्ञानस्वभाव में स्थिरता होने से वीतरागी चारित्र

होता है।

अहो! द्रव्य के परिणामों का स्व-अवसर कहो अथवा क्रमबद्ध परिणाम कहो, उसकी प्रतीति करने से त्रिकाली द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है। परिणाम के स्व-अवसर की यह बात स्वीकार करने से निमित्ताधीन दृष्टि नहीं रहती, निमित्त आये तो वस्तु में परिणामन हो या निमित्त के कारण परिणाम में फेरफार होता है, कर्म के उदय से विकार होता है या व्यवहार करते-करते परमार्थ प्रगट होता है, पर्याय के आधार से पर्याय होती है - ऐसी मान्यता छूट जाती है। समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में द्रव्य में से प्रगट होते हैं। जहाँ द्रव्य का प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर में 'सत्' है वहाँ निमित्त के सन्मुख देखना ही कहाँ रहा? और मैं पर में फेरफार करूँ या पर से मुझसे फेरफार हो - यह बात भी कहाँ रही? मात्र ज्ञाता और ज्ञेयपना ही रहता है, यही मोक्षमार्ग है, यही सम्यक् पुरुषार्थ है।

जो तीनकाल के परिणाम हैं, वे द्रव्य के प्रवाहरूपी सांकल की कड़ियाँ हैं। जिसप्रकार सांकल की कड़ियाँ आगे-पीछे नहीं होती; जैसी हैं, वैसी ही रहती हैं, उसीप्रकार द्रव्य के अनादि-अनंत परिणाम अपने अवसर से आगे-पीछे नहीं होते, प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर में सत् हैं। इसमें तीन काल के परिणामों की एक अखण्ड सांकलरूप उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात है। द्रव्य अपने परिणाम-स्वभाव में स्थित है।

यहाँ प्रथम, परिणामों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव सिद्ध करते हैं और पश्चात् यह सिद्ध करेंगे कि परिणाम-स्वभाव में स्थित होने से वह द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त सत् हैं। ज्ञाता द्वारा वस्तु के ऐसे स्वभाव को मानना, स्वीकार करना और ज्ञेयों में फेरफार करने की मान्यता छोड़ना सम्यक्त्व है तथा पदार्थों के स्वभाव का ज्ञाता रहना ही वीतरागतरूप धर्म है।

इस प्रवचनसार में पहले तो ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन में आत्मा का ज्ञानस्वभाव

निश्चित किया है और फिर दूसरे अधिकार में ज्ञेयतत्त्वों का वर्णन किया है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान ही है और जीव-अजीव में अपने-अपने अवसर में होने वाले तीनकाल के परिणाम ज्ञेय हैं - ऐसी प्रतीति होने पर वस्तु-व्यवस्था में फेरफार या पर्यायों में आगे-पीछे करने की बुद्धि नहीं रहती; इसलिए ज्ञान स्व में स्थिर हो जाता है। यही वीतरागता और केवलज्ञान का यथार्थ कारण है।

पदार्थों का जैसा सत्स्वभाव हो, वैसा माने तो मान्यता सत्य कहलाये; किन्तु पदार्थों के सत्स्वभाव से अन्य प्रकार माने तो वह मान्यता मिथ्या है। यहाँ 'सत्' की श्रद्धा कराते हैं। 'सत्' द्रव्य का लक्षण है और वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वाला है। द्रव्य के ऐसे सत्स्वभाव की प्रतीति करना ही सम्यग्दर्शन है; क्योंकि यही सच्चा 'तत्त्वार्थश्रद्धान' है। इस समय बात तो परिणामों की चल रही है, किन्तु परिणाम के निर्णय में परिणामी द्रव्य का निर्णय भी आ जाता है, क्योंकि वे परिणाम त्रिकाली द्रव्य के ही हैं। परिणाम परिणामी से अभिन्न होने से एक के निर्णय में दूसरे का निर्णय हो ही जाता है। परिणाम अधर में नहीं होते, किन्तु परिणामी के आधार से ही परिणाम हैं; इसलिए परिणाम का निर्णय करने से परिणामी द्रव्य का निर्णय हो जाता है और अकेले परिणाम पर से रुचि हटकर त्रिकाली द्रव्यस्वभाव पर ज्ञान का झुकना सम्यग्दर्शन है और यही वीतरागता का मूल है।

इस गाथा में वस्तु-स्थिति का अलौकिक रीति से वर्णन किया है। समस्त द्रव्य 'सत्' है और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-सहित परिणामस्वभावी है - ऐसा इस गाथा में सिद्ध किया है।

टीका में प्रथम तो द्रव्य में समग्रपने से अनादि-अनंत प्रवाह की एकता और फिर प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान सूक्ष्म अंशरूप परिणामों का परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया है। तत्पश्चात् समुच्चयरूप से सम्पूर्ण द्रव्य के

त्रिकाली परिणामों को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सिद्ध किया है। उसके दृष्टान्त में द्रव्य के समस्त प्रदेशों को क्षेत्र-अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सिद्ध किया है। फिर एक ही परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकपना बतलाया।

इसप्रकार परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने के पश्चात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणाम के प्रवाह में निरन्तर वर्त रहा द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित होने से सत् है - ऐसा कहा है।

ऊपर जो बातें कही हैं, उनमें तीसरे बोल में 'अपने-अपने अवसर में' त्रैकालिक समस्त परिणामों के एक ही साथ होने वाले उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात करके यहाँ अकेला ज्ञायकभाव ही बतलाया है।

यहाँ परिणामों में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाने के लिए प्रदेशों का उदाहरण लिया है। कोई ऐसा कहे कि दूसरा कोई सरल उदाहरण न देकर आचार्यदेव ने प्रदेशों का ऐसा सूक्ष्म उदाहरण क्यों दिया? उनसे कहते हैं कि भाई! द्रव्य के प्रदेशों का सारा क्षेत्र एकसाथ अक्रम से फैला पड़ा है और परिणामों की व्यक्तता तो क्रमशः होती है, इसलिए प्रदेशों की अपेक्षा परिणामों की बात सूक्ष्म है। यहाँ परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की सूक्ष्म एवं गंभीर बात समझाना है, इसलिये उदाहरण भी प्रदेशों का सूक्ष्म ही लेना पड़ा है। यदि बाह्य स्थूल उदाहरण दें तो सिद्धान्त की जो सूक्ष्मता और गम्भीरता है, वह ख्याल में नहीं आयेगी, इसलिये ऐसे सूक्ष्म उदाहरण की ही यहाँ आवश्यकता है।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है और ज्ञान का स्वभाव जानना है, वह जानने का ही कार्य करता है। आत्मा में और पर में जो अवस्था हो उसे वैसा ही जानना ज्ञान का स्वभाव है, ज्ञान उसमें कुछ भी फेरफार करता नहीं, ज्ञान तो केवल जानता है। जानने के अतिरिक्त ज्ञान का अन्य कोई कार्य नहीं है। रागादि परिणामों को भी मात्र जानना ज्ञान का कार्य है। राग को

अपना त्रिकालीस्वभाव मानना ज्ञान का कार्य नहीं है और उस राग-परिणाम को बदलकर आगे पीछे करे - ऐसा भी ज्ञान का कार्य नहीं है। बस! स्व या पर, विकारी या अविकारी समस्त ज्ञेयों को जानना ही ज्ञान का कार्य है। आत्मा को मात्र रागादि परिणामों जितना मानना ज्ञान का कार्य नहीं है। ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीति ही सम्यग्दर्शन एवं वीतरागता का मूल है।

इस जगत् में अनंत जीव, अनंतानन्त पुद्गल, एक-एक धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय एवं आकाश और असंख्यात कालाणु रूप छह प्रकार के पदार्थ हैं। उनमें से प्रत्येक आत्मा का ज्ञानगुण छहों पदार्थों की क्रमशः होने वाली समस्त अवस्थाओं को तथा द्रव्य-गुणों को जानने वाला है। ऐसे ज्ञानस्वभाव को जो जानता है वह जीव राग-परिणाम को जानता अवश्य है, किन्तु उस राग को अपना मूलस्वरूप नहीं मानता - राग को धर्म नहीं मानता और राग-परिणाम को आगे-पीछे करने वाला भी नहीं मानता। अपने अवसर (स्व-काल) में वह राग-परिणाम भी सत् है, और उसे जानने वाला ज्ञान भी सत् है। द्रव्य के त्रिकाली प्रवाहक्रम में वह राग-परिणाम भी सत् रूप से आ जाता है, इसलिये वह भी ज्ञान का ज्ञेय है। राग था इसलिये राग का ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं है, किन्तु ज्ञान का ही स्वभाव जानने का है। पूर्ण स्वज्ञेय को जानने वाला ज्ञान उस राग को भी स्वज्ञेय के अंशरूप से जानता है, त्रिकाली अंशी के ज्ञानसहित अंश का भी ज्ञान करता है। यदि राग को स्वज्ञेय के अंशरूप से सर्वथा न जाने तो उस ज्ञान में सम्पूर्ण स्वज्ञेय नहीं होता, इसलिये वह ज्ञान सच्चा नहीं होता, और यदि उस रागरूप अंश को ही पूर्ण स्वज्ञेय मान ले और त्रिकाली द्रव्य-गुण को स्वज्ञेय न बनाये तो वह ज्ञान भी मिथ्या है। द्रव्य, गुण और समस्त पर्यायें - ये तीनों मिलकर स्वज्ञेय पूरा होता है। उसमें अंशी-त्रिकाली द्रव्य-गुण की रुचि सहित अंश को और परज्ञेय को जानने का कार्य सम्यग्ज्ञान करता है। यथार्थ ज्ञान में ज्ञेयों का स्वभाव कैसा ज्ञात

होता है, उसका यह वर्णन है।

समस्त पदार्थों का स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है, प्रत्येक पदार्थ में प्रतिसमय परिणाम होते हैं। ये परिणाम क्रमानुसार अनादि-अनंत होते हैं, इसलिये स्व-अवसर में होने वाले परिणामों का प्रवाह अनादि-अनन्त है। उस प्रवाहक्रम का छोटे से छोटा प्रत्येक अंश भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप वाला है। अनादि-अनंत काल के प्रत्येक समय में उस-उस समय का परिणाम स्वयं सत् है। ऐसे सत् परिणामों को ज्ञान जानता है, किन्तु उनमें कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता। जैसे - अग्नि या बरफ आदि पदार्थों को आँख देखती है, किन्तु उसमें कुछ भी फेरफार नहीं करती; उसीप्रकार ज्ञान की पर्याय भी ज्ञेयों को सत् रूप से जैसे हैं; वैसा जानती ही है, उनमें कुछ फेरफार नहीं करती। स्व-अवसर में जब जो परिणाम है, उस समय वही परिणाम होता है, अन्य परिणाम नहीं होते - ऐसा जहाँ ज्ञान में निश्चित किया वहाँ किसी भी ज्ञेय को उल्टा-सीधा करने की मिथ्याबुद्धि एवं राग-द्वेष नहीं होते।

अहा! देखो तो! क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में कितनी गंभीरता है। द्रव्य की पर्याय पर से बदलती है - यह बात तो है ही नहीं, किन्तु द्रव्य स्वयं अपनी पर्याय को उल्टा-सीधा करना चाहे तो भी नहीं हो सकती। जिसप्रकार त्रिकाली द्रव्य पलटकर अन्यरूप नहीं होता, उसीप्रकार उसका प्रत्येक समय का अंश (परिणाम) भी बदलकर अन्यरूप नहीं होता। जीव पलटकर कभी भी अजीवरूप नहीं होता और अजीव पलटकर कभी भी जीवरूप नहीं होता। जिसप्रकार त्रिकाली सत् नहीं बदलता, उसीप्रकार उसका वर्तमान सत् भी नहीं बदलता। जिसप्रकार त्रिकाली द्रव्य नहीं बदलता, उसीप्रकार उसकी प्रत्येक समय की अनादि-अनंत अवस्थाएँ भी जिस समय जो होनी है, उसमें फेरफार नहीं हो सकता। त्रिकाली प्रवाह के वर्तमान अंश अपने-अपने काल में सत् है - ऐसी श्रद्धा से पर

में या स्व में कहीं भी फेरफार करने की बुद्धि नहीं रहती, इसलिये ज्ञान ज्ञातामात्र रह जाता है, पर्यायबुद्धि में नहीं रुकता। इसप्रकार ज्ञान जानने का कार्य करता है - ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करना ही सम्यग्दर्शन है। ज्ञानी जीव केवलज्ञान होने से पूर्व केवली भगवान का लघुनन्दन हो जाता है। श्रद्धा-अपेक्षा से तो साधक जीव भी सर्व का ज्ञायक हो जाता है।

समस्त पदार्थों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-स्वभाव को निश्चित करने से स्व में या पर में फेरफार करने की बुद्धि नहीं रहती, किन्तु ज्ञान में केवल जानने का ही कार्य रह जाता है, पर में परिवर्तन करने की चिन्ता नहीं रहती, अतः अब ज्ञान में 'ऐसा क्यों' - यह प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए तथा अपने में स्थिर हो जाना चाहिए। इसी में ज्ञान का परम पुरुषार्थ है, इसी में मोक्षमार्ग का और केवलज्ञान प्राप्त करने का पुरुषार्थ आ जाता है। पर में कर्तृत्वबुद्धि वाले को ज्ञान-स्वभाव की प्रतीति नहीं होती, इसकारण उसे ज्ञानस्वभाव का - ज्ञायकपने का पुरुषार्थ भी प्रकट नहीं होता।

अहो! समस्त द्रव्य अपने-अपने अवसर में होने वाले परिणामों में वर्त रहे हैं, उनमें तू कहाँ कैसे परिवर्तन करेगा? भाई! तेरा स्वभाव तो देखने का है। तू देखनेवाले को दृष्टा ही रख, दृष्टा को हाय-हाय करने वाला न बना। दृष्टास्वभाव की प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है। मैं पर में फेरफार करता हूँ और पर मुझमें फेरफार करता है - ऐसा भाव मिथ्यादृष्टि का होता है। उसे ज्ञान और ज्ञेय के स्वभाव की प्रतीति नहीं है। जगत् के जड़ या चेतन समस्त द्रव्य अपने प्रवाह में वर्तते हैं, उनमें जो-जो अंश वर्तमान में वर्त रहा है, उसे कोई आगे-पीछे नहीं कर सकता। मैं ध्यान रखकर शरीर को स्वस्थ रखूँ - ऐसा कोई माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। शरीर का प्रत्येक परमाणु उसके अपने प्रवाहक्रम में वर्त रहा है, उसके क्रम को कोई बदल नहीं सकता। कहीं भी फेरफार करने का आत्मा के किसी भी गुण का कार्य नहीं है, किन्तु स्व को जानते हुए पर को जाने - ऐसा उसके

ज्ञान-गुण का स्व-पर-प्रकाशक कार्य है। इसकी प्रतीति ही मुक्ति का कारण है।

प्रत्येक द्रव्य त्रिकाल परिणामित होता रहता है। उसके त्रिकाल के प्रवाह में स्थित समस्त परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं। अपने स्वकाल में वे सब परिणाम अपनी अपेक्षा से उत्पाद-रूप हैं, पूर्व के परिणाम की अपेक्षा से व्ययरूप हैं और परस्पर सम्बन्ध वाले अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से वे ध्रौव्य हैं। द्रव्य के समस्त परिणाम अपने-अपने काल में सत् हैं। वे परिणाम स्वयं अपनी अपेक्षा से वे असत् (व्ययरूप) हैं और प्रथम-पश्चात् के भेद किये बिना अखण्ड प्रवाह को देखो तो समस्त परिणाम ध्रौव्य हैं। द्रव्य त्रिकाल होने पर भी जब देखो तब वह वर्तमान परिणाम में वर्त रहा है, कहीं भूत में या भविष्य में नहीं वर्तता। द्रव्य के तीनों काल के जो वर्तमान परिणाम हैं वे अपने से पहले के परिणाम के अभाव स्वरूप से उत्पाद-रूप हैं तथा वे ही अखण्डप्रवाह-रूप से ध्रौव्यरूप हैं।

देखो, इसमें यह बात आ गई कि पूर्व के परिणाम के अभाव-स्वरूप वर्तमान परिणाम है, इसलिए पूर्व के संस्कार वर्तमान में नहीं आते और न पूर्व का विकार वर्तमान में आता है। पहले विकार किया था इसलिए इस समय विकार हो रहा है - ऐसा नहीं है। वर्तमान परिणाम स्वतंत्रतया द्रव्य के आश्रय से होते हैं। यह निर्णय होने से ज्ञान और श्रद्धा द्रव्य-स्वभावोन्मुख हो जाते हैं। जिसप्रकार त्रिकाली जड़ द्रव्य बदलकर चेतन या चेतन द्रव्य बदलकर जड़ नहीं होता, उसीप्रकार उसका वर्तमान प्रत्येक अंश भी बदलकर दूसरे अंशरूप नहीं होता। जिस-जिस समय का जो अंश है उस-उस रूप ही वह सत् रहता है। जिसप्रकार भगवान सर्वज्ञरूप से ज्ञाता हैं; उसीप्रकार वस्तु-स्वरूप की यथार्थ प्रतीति करने वाला स्वयं भी प्रतीति में ज्ञाता हो जाता है।

पर में फेर-बदल करने की बात तो दूर ही रही, यहाँ तो यह कह रहे हैं कि द्रव्य स्वयं अपने अंश को भी आगे-पीछे नहीं कर सकता, पहले का अंश पीछे नहीं होता, पीछे का अंश पहले नहीं होता - ऐसा निर्णय करने वाले की अंशबुद्धि दूर होकर अंशी की दृष्टि होने से सम्यक्त्व-परिणाम का उत्पाद और मिथ्यात्व-परिणाम का व्यय हो जाता है।

आत्मा का ज्ञानगुण आत्मा के आधार से ही टिका है। वह ज्ञाता स्वभाववाला है और उसके तीनकाल के परिणाम अपने-अपने अवसर के अनुसार द्रव्य में से होते रहते हैं। आत्मा अपने वर्तमान में प्रवर्तमान अंश को कम-अधिक या आगे-पीछे कर सके - ऐसा उसका स्वभाव ही नहीं है। पर के परिणाम में भी वह फेरफार नहीं कर सकता है। स्व-पर समस्त ज्ञेयों को यथावत् जानने का ही आत्मा का स्वभाव है। ऐसे ज्ञाता स्वभाव की प्रतीति में ही आत्मा को सम्यक्त्व की प्राप्ति संभव है।

प्रश्न :- मिथ्यात्व-परिणाम को बदलकर सम्यक्त्वरूप करूँ - ऐसा भाव तो सभी को होते देखा जाता है?

उत्तर :- देखो, ज्ञाता-स्वभाव की प्रतीति करने से सम्यग्दर्शन होता है, उसमें मिथ्यात्व दूर हो ही जाता है। सम्यक्त्व-परिणाम का उत्पाद हुआ उससमय मिथ्यात्व-परिणाम वर्तमान नहीं होते, इसलिए उन्हें बदलना भी कहाँ रहा? मिथ्यात्व को हटाकर सम्यक्त्व करूँ - ऐसे लक्ष से सम्यक्त्व नहीं होता; किन्तु द्रव्य-सन्मुख दृष्टि होने से सम्यक्त्व का उत्पाद होता है, उसमें पूर्व के मिथ्यात्व-परिणाम का अभाव हो ही जाता है, इसलिये उस परिणाम को भी बदलना नहीं रहता। मिथ्यात्व दूर होकर जो सम्यक्त्व पर्याय प्रगट होती है, उसे भी आत्मा जानता है; किन्तु परिणाम के किसी भी क्रम को वह आगे-पीछे नहीं करता।

अहो! जिस-जिस पदार्थ का जो वर्तमान अंश है, वह कभी नहीं बदलता - इसमें अकेला वीतरागी विज्ञान ही आता है। पर्याय को

बदलने की बुद्धि नहीं है और 'ऐसा क्यों' - ऐसा विषय भाव नहीं है, इसलिये श्रद्धा और चारित्र - दोनों का मेल बैठ जाता है।

त्रिकाली द्रव्य के प्रत्येक समय के परिणाम सत् हैं - ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है। द्रव्य सत् है और पर्याय भी सत् है। यह 'सत्' जिसके चित्त में नहीं बैठा और 'मैं पर्यायों में फेरफार कर सकता हूँ - ऐसा मानता है उसे वस्तु के स्वभाव की, सर्वज्ञदेव की, गुरु की या शास्त्र की बात नहीं जमी है अतः हम कह सकते हैं कि वास्तव में उसने देव-शास्त्र-गुरु में से किसी को नहीं माना है।

त्रिकाली वस्तु का वर्तमान कब नहीं होता? सदैव होता है। वस्तु का कोई भी वर्तमान अंश लो, वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है। वस्तु को जब देखो तब वह वर्तमान में वर्त रही है। इस वर्तमान को यहाँ स्वयंसिद्ध सत् सिद्ध करते हैं। जिसप्रकार त्रिकाली सत् पलटकर चेतन से जड़ नहीं हो जाता; उसीप्रकार उसका प्रत्येक वर्तमान अंश सत् है, वह अंश भी पलटकर आगे-पीछे नहीं होता। जिसने ऐसे वस्तु-स्वभाव को जाना, उसको जो अपने ज्ञायक-स्वरूप की प्रतीति हुई, वही धर्म है।

तीनों काल के समय में तीनों काल के परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं। वर्तमान एक समय का परिणाम एक समय पहले नहीं था, नया उत्पन्न हुआ है, इसलिये वह उत्पाद-रूप है और उस परिणाम के समय पूर्व के परिणाम का व्यय है, पूर्व-परिणाम का व्यय होकर वह परिणाम उत्पन्न हुआ है इसलिये पूर्व-परिणाम की अपेक्षा वही परिणाम व्ययरूप है, और तीनों काल के परिणाम के अखण्ड-प्रवाह की अपेक्षा से वह परिणाम उत्पन्न भी नहीं हुआ है और विनाशरूप भी नहीं है, ध्रौव्य है। इसप्रकार अनादि-अनंत प्रवाह में जब देखो तब प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभावरूप है।

किसी भी वस्तु की पर्याय में फेरफार करने की उमंग पर्यायबुद्धि रूप मिथ्यात्व है। उसे ज्ञान-स्वभाव की प्रतीति नहीं है और ज्ञेयों के उत्पाद-

व्यय-ध्रौव्य स्वभाव की भी खबर नहीं है। जो वस्तु 'सत्' है, उसको जानने के अतिरिक्त उसमें कोई कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता? यदि कोई सत् में फेरफार करना मानेगा तो उसके मानने से सत् तो नहीं बदलेगा, किन्तु उसका ज्ञान ही असत् हो जायगा। जिसप्रकार वस्तु सत् है, उसीप्रकार उसे भगवान ने केवलज्ञान में जाना है, वही वाणी द्वारा कहा है। जैसा सत् था, वैसा मात्र देखा, जाना और कहा है। वाणी भी जड़ है, अतः उसे भी भगवान नहीं बोलते। भगवान का आत्मा तो अपने केवलज्ञान-परिणाम में वर्त रहा है और उनकी वाणी की पर्याय परमाणुओं के परिणाम-प्रवाह में वर्त रही है तथा समस्त पदार्थ अपने सत् में वर्त रहे हैं। ज्ञायकमूर्ति आत्मा तो केवल जानने का कार्य करता है। बस इसीप्रकार की प्रतीति और परिणति का नाम मोक्षमार्ग है।

भगवान सर्व जगत् के मात्र ज्ञाता-दृष्टा हैं, किसी में राग-द्वेष या फेरफार करने वाले नहीं हैं। भगवान की भाँति मेरे आत्मा का स्वभाव भी मात्र जानने का है - इसप्रकार सब अपने ज्ञाता-स्वभाव की श्रद्धा करें और पदार्थों में फेरफार करने की बुद्धि छोड़ें। जिसने अपने ज्ञान-स्वभाव को माना, उसी ने अरिहंतदेव को माना, उसी ने आत्मा को माना, उसी ने गुरु को तथा शास्त्र को माना, उसी ने नवपदार्थों को माना, उसी ने छहद्रव्यों को तथा उनके वर्तमान अंश को माना, बस इसी का नाम सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान है।

'जानना' आत्मा का स्वभाव है। जानना ही आत्मा का पुरुषार्थ है। जानना ही आत्मा का धर्म है। उसी में मोक्षमार्ग और वीतरागता है। अनंत सिद्ध भगवंत भी प्रतिसमय पूर्ण जानने का ही कार्य कर रहे हैं।

ज्ञान में स्व-पर दोनों ज्ञेय हैं। 'ज्ञान ज्ञाता है' - ऐसा जाना वहाँ ज्ञान भी स्वज्ञेय हुआ। ज्ञान को रागादि का कर्ता माने या बदलने वाला माने तो उसने ज्ञान के स्वभाव को नहीं जाना है, स्वयं अपने को स्वज्ञेय नहीं बनाया; इसलिये उसका ज्ञान मिथ्या है। वस्तु के समस्त परिणाम अपने-

अपने समय में सत् हैं - ऐसा कहते ही अपना स्वभाव ज्ञायक ही है - ऐसा उसमें सहज आ जाता है।

इस गाथा में क्षेत्र का उदाहरण देकर पहले द्रव्य का त्रिकाली सत्पना बतलाया, उसके त्रिकाली प्रवाहक्रम के अंश बतलाये और उन अंशों में (परिणाम में) अनेकतारूप प्रवाहक्रम का कारण उनका परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण द्रव्य के समस्त परिणामों को स्व-अवसर में वर्तनेवाला उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बतलाया।

अब, प्रत्येक समय के वर्तमान परिणाम को लेकर उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना बतलाते हैं। पहले समय परिणामों की बात थी, अब यहाँ केवल एक परिणाम की अपेक्षा बात करते हैं। इसके बाद परिणामी द्रव्य की ही बात कहकर द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बतलायेंगे।

“जिसप्रकार वस्तु (क्षेत्र) का जो छोटा से छोटा (अन्तिम) अंश पूर्व-प्रदेश के विनाशरूप हैं, वही अंश उत्तर-प्रदेश के उत्पाद-स्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुभव-स्वरूप है, दो में से एक स्वरूप भी नहीं है। उसीप्रकार प्रवाह (काल) का जो छोटे से छोटा अंश पूर्व-परिणाम के विनाश-स्वरूप है, वही उत्तर-परिणाम के उत्पाद-स्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एकप्रवाहपने द्वारा अनुभवस्वरूप है।”

जिसप्रकार असंख्यप्रदेशी आत्मा का कोई भी एक प्रदेश लो तो वह प्रदेश (क्षेत्र-अपेक्षा से) पूर्व-प्रदेश के व्ययरूप है, उत्तर-प्रदेश के उत्पादरूप है और अखण्डक्षेत्र की अपेक्षा से ध्रौव्य है, उसीप्रकार अनादि-अनंत प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान कोई भी एक परिणाम पूर्व के परिणाम से व्ययरूप है, बाद के परिणाम की अपेक्षा से अर्थात् स्वयं अपनी अपेक्षा से उत्पाद-स्वरूप है और पहले-पीछे का भेद किये बिना सम्पूर्ण प्रवाहक्रम के अंशरूप से देखें तो वह परिणाम ध्रौव्यरूप है। इसप्रकार प्रत्येक परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

जहाँ समस्त परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात थी, वहाँ ‘अपने-अपने अवसर में’ - ऐसा कहकर उस प्रत्येक का स्वतंत्र स्वकाल बतलाया था और यहाँ एक परिणाम की विवक्षा को लक्ष्य में रखकर बात करने से उन शब्दों का उपयोग नहीं किया, क्योंकि वर्तमान एक ही परिणाम लिया, सो उसी में उसका वर्तमान स्वकाल आ गया।

वर्तमान वर्तनेवाला परिणाम पूर्व-परिणाम के अभावरूप ही है, इसलिये पूर्व के विकार का अभाव करने की बात नहीं रही और वर्तमान परिणाम वर्तमान में सत् रूप है ही, इसमें भी फेरफार करना नहीं रहता - ऐसा समझने पर मात्र वर्तमान परिणाम की दृष्टि से परिणाम और परिणामी की एकता होने पर सम्यक्त्व का उत्पाद होता है, उसमें पूर्व के मिथ्यात्व-परिणाम का तो व्यय है ही, उसे दूर नहीं करना पड़ता। किसी भी परिणाम को मैं नहीं बदल सकता, मात्र जानता हूँ - ऐसा मेरा स्वभाव है - इसप्रकार ज्ञान-स्वभाव की प्रतीति में सम्यक्त्व-परिणाम का उत्पाद है और उसी में मिथ्यात्व का व्यय है; इसलिये मिथ्यात्व को दूर करूँ और सम्यक्त्व प्रगट करूँ - यह बात भी नहीं रहती। जहाँ ऐसी बुद्धि हुई, वहाँ उस समय का सत्परिणाम स्वयं ही सम्यक्त्व के उत्पादरूप और मिथ्यात्व के व्ययरूप है तथा एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित परिणामों के अखण्ड प्रवाहरूप से वह परिणाम ध्रौव्य है। इसप्रकार प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है।

जिसप्रकार सम्पूर्ण वस्तु सत् है, उसीप्रकार उसका वर्तमान भी सत् है। वस्तु के त्रिकाली प्रवाह में प्रत्येक समय का अंश सत् है। वर्तमान समय का परिणाम अपने से सत् है, पूर्व के परिणाम के अभाव के कारण नहीं। वह वर्तमान अंश पर से नहीं, किन्तु अपने से है। प्रत्येक समय का वर्तमान अंश निरपेक्ष-रूप से अपने से ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप सत् है।

जगत् के सम्पूर्ण तत्त्व सत् हैं, उनकी पहली पर्याय के कारण भी दूसरी पर्याय नहीं होती, तब फिर तू उसमें क्या करेगा? तू तो मात्र ज्ञाता रहा। इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ मानेगा तो, वस्तु में तो कुछ भी फेरफार नहीं होगा, किन्तु तेरा ज्ञान ही मिथ्या साबित होगा।

वस्तु का वर्तमान अंश सत् है। यहाँ तो प्रत्येक समय के वर्तमान परिणाम को सत् सिद्ध किया है। द्रव्य के आधार से अंश है – यह बात इस समय नहीं लेना है। यदि द्रव्य के कारण परिणाम का सत्पना हो, तब तो सभी परिणाम एक समान ही हों, इसलिये द्रव्य के कारण परिणाम का सत्पना न लेकर प्रत्येक समय का परिणाम स्वयं सत् है और द्रव्य ही उस वर्तमान परिणामरूप से वर्तता हुआ सत् है – ऐसा लिया है। प्रवाह का वर्तमान अंश उसी अंश के कारण स्वतंत्र सत् है। इसप्रकार प्रत्येक समय का अकारणीय सत् सिद्ध किया है। समय-समय का सत् अहेतुक है। समस्त पदार्थों के तीनों काल के प्रत्येक समय का प्रत्येक अंश निरपेक्ष सत् है। ज्ञान उसे जैसे का तैसा यथावत् जानता है, किन्तु बदलता नहीं है। ज्ञान से जाना इसलिये वह अंश वैसा है – ऐसी बात नहीं है। वह स्वयं सत् है।

वर्तमान परिणाम पूर्व-परिणाम के व्ययरूप है, इसलिये वर्तमान परिणाम को पूर्व-परिणाम की भी अपेक्षा नहीं रही, तब फिर परपदार्थ के कारण उसमें कुछ हो – यह बात कहाँ रही? केवली भगवान को पहले समय केवलज्ञान हुआ, इसलिये दूसरे समय वह केवलज्ञान रहा – ऐसा नहीं है, किन्तु दूसरे समय के उस वर्तमान परिणाम का केवलज्ञान उस समय के अंश से ही सत् है। पहले समय के सत् के कारण दूसरे समय का सत् नहीं है। इसीप्रकार सिद्ध भगवान को पहले समय में सिद्ध-पर्याय थी, इसलिये दूसरे समय में भी सिद्धपर्याय हुई – ऐसा भी नहीं है। सिद्धों में

और समस्त द्रव्यों में प्रत्येक समय का अपना-अपना अंश स्वतंत्र सत् स्वरूप है।

यहाँ एक अंश के परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में ‘अपने अवसर में’ – ऐसी भाषा का उपयोग नहीं किया, क्योंकि वर्तमान में प्रवर्तित एक परिणाम की बात है और वर्तमान में जो परिणाम वर्तता है, वही उसका स्वकाल है। तीनों काल के प्रत्येक परिणाम का जो वर्तमान है वह वर्तमान ही उसका स्वकाल है। अपने वर्तमान को छोड़कर वह आगे-पीछे नहीं होता। इसप्रकार वर्तमान प्रत्येक परिणाम का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव है।

इस गाथा में अभी तक चार बोल आये :-

(१) द्रव्य का अखण्ड प्रवाह एक है और उसके क्रमशः होनेवाले अंश परिणाम हैं।

(२) उन परिणामों में अनेकता है, क्योंकि उनमें परस्पर व्यतिरेक है।

(३) तीनों काल के परिणामों का पूरा दल लेकर समस्त परिणामों में सामान्यरूप से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना कहा है।

(४) सम्पूर्ण प्रवाह का एक अंश लेकर प्रत्येक परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहे।

इसप्रकार परिणाम का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना निश्चित करके अब परिणामी (द्रव्य) में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करते हैं।

“इसप्रकार स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणाम-पद्धति में (परिणामों की परम्परा में) प्रवर्तमान द्रव्य-स्वभाव का अतिक्रमण न करने से सत्त्व को त्रिलक्षण ही अनुमोदना।

द्रव्य के समस्त परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप है और उन परिणामों के क्रम में प्रवर्तमान द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त ही है।

यदि परिणाम की भाँति द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त न हो तो वह परिणामों की परम्परा में वर्त ही नहीं सकता। जो द्रव्य है सो उत्पाद व्यय-ध्रौव्यरूप समस्त परिणामों की परम्परा में वर्तता है, इससे उसके भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है। 'परिणामों की पद्धति' कही है अर्थात् जिसप्रकार सांकल की कड़ियाँ आगे-पीछे नहीं होती, उसीप्रकार परिणामों का प्रवाहक्रम नहीं बदलता। जिस समय द्रव्य का जो परिणाम प्रवाहक्रम में हो उस समय उस द्रव्य का वही परिणाम होता है, दूसरा परिणाम नहीं होता। देखो, यह वस्तु के सत्-स्वभाव का वर्णन है। वस्तु का सत्-स्वभाव है, सत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त परिणाम है और उसे भगवान द्रव्य का लक्षण कहते हैं 'सत् द्रव्यलक्षण'। तेरा स्वभाव जानने का है। जैसा सत् है वैसा तू जान। सत् का उल्टा-सीधा करने की बुद्धि करेगा तो तेरे ज्ञान में मिथ्यात्व होगा। वस्तुएँ सत् हैं और मैं उनका ज्ञाता हूँ - ऐसी श्रद्धा होने के पश्चात् अस्थिरता का विकल्प उठता है, किन्तु उसमें मिथ्यात्व का जोर नहीं आता; इसलिये ऐसे ज्ञान और ज्ञेय की श्रद्धा के बल से उस अस्थिरता का विकल्प भी टूटकर वीतरागता और केवलज्ञान होंगे ही।

सर्वज्ञदेव ने केवलज्ञान में वस्तु का स्वभाव जैसा है वैसा पूर्ण जाना और वैसा ही वाणी में आ गया। जैसा वस्तु का स्वभाव है, वैसा जानकर मानें तो ज्ञान और श्रद्धा सम्यक् हो, वस्तु के स्वभाव को यथावत् न जाने तथा अन्य रीति से माने तो सम्यक्ज्ञान और सम्यक्श्रद्धान नहीं होता। और उसके बिना व्रत-तपादि सच्चे नहीं होते।

देखो, अभी तक यह कहा गया है कि प्रत्येक चेतन और जड़पदार्थ स्वयं सत् है, उसमें एक-एक समय में परिणाम होता है, वह परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है। मूल वस्तु त्रिकाल है, वह वस्तु असंयोगी स्वयंसिद्ध है, वह किसी से निर्मित नहीं है और न कभी उसका नाश होता

है, जब देखो तब वह प्रतिसमय सत् रूप से वर्त रही है।

प्रत्येक समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है। उसमें वस्तु वर्त रही है। प्रत्येक द्रव्य में तीनकाल के जितने समय हैं उतने ही परिणाम हैं। जैसे - एक सुवर्णपिण्ड के सौ वर्ष लिये जायें तो उन सौ वर्षों में हुई उस स्वर्णपिण्ड की कड़ा, कुंडल, हार आदि समस्त अवस्थाओं का एक पिण्ड सोना है, उसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य तीनकाल के समस्त परिणामों का पिण्ड है। वे परिणाम क्रमशः एक के बाद एक होते हैं। तीनकाल के समस्त परिणामों का प्रवाह द्रव्य का प्रवाहक्रम है और उस प्रवाहक्रम का एक समय का अंश परिणाम है। तीनकाल के जितने समय हैं उतने ही प्रत्येक द्रव्य के परिणाम हैं। उस प्रत्येक परिणाम में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सिद्ध किये हैं। अपने-अपने निश्चित अवसर में प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। किसी अन्य से किसी अन्य के परिणाम का उत्पाद नहीं होता तथा कोई परिणाम आगे-पीछे नहीं होते। इस निर्णय में सर्वज्ञता का निर्णय और ज्ञायक द्रव्य की दृष्टि हो जाती है।

आत्मा में जो वर्तमान ज्ञान-अवस्था है, उस अवस्था में ज्ञानगुण वर्त रहा है, दूसरी अवस्था होगी तब उसमें वर्तमान वर्तेगा और तीसरी अवस्था के समय भी वर्तमान वर्तेगा। इसप्रकार दूसरी-तीसरी-चौथी सभी अवस्थाओं के प्रवाह का पिण्ड ज्ञानगुण है। ऐसे अनंतगुणों का पिण्ड द्रव्य है। द्रव्य के प्रतिसमय जो परिणाम होते हैं, वे परिणाम वर्तमान अपेक्षा से उत्पादरूप हैं, पूर्व के अभाव की अपेक्षा से व्ययरूप हैं और अखण्ड प्रवाह में वर्तनेवाले अंशरूप से ध्रौव्य हैं। ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वाला जो परिणाम है, वह प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है और ऐसे स्वभाव में द्रव्य नित्य प्रवर्तमान है इसलिये द्रव्य स्वयं भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव वाला है - ऐसा समझना।

प्रत्येक वस्तु पलटती हुई नित्य है। यदि वस्तु अकेली 'नित्य' ही हो

तो उसमें सुख-दुःख आदि कार्य नहीं हो सकते, और यदि वस्तु एकान्ततः पलटती ही रहे तो वह त्रिकालस्थायी नहीं रह सकती, दूसरे ही क्षण उसका सर्वथा अभाव हो जायेगा। इसलिये वस्तु अकेली नित्य या अकेली पलटती नहीं है, किन्तु नित्यस्थायी रहकर प्रतिक्षण पलटती है। इसप्रकार नित्य पलटती हुई वस्तु कहो या 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' कहो - एक ही बात है। अल्प से अल्पकाल में होनेवाले परिणाम में वर्तता द्रव्य नित्यस्थायी है। उसके प्रत्येक परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है - यह बात स्पष्ट हो गई है। अब कहते हैं कि द्रव्य स्वयं भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है।

समस्त पदार्थ सत् है। पदार्थ 'है' - ऐसा कहते ही उसका सत्पना आ जाता है। पदार्थों का सत्पना पहले ७८वीं गाथा में सिद्ध कर चुके हैं। पदार्थ सत् हैं और सत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित है। कोई भी वस्तु हो वह त्रिकाल अर्थात् प्रत्येक समय में वर्तमान रूप से वर्तती है। कहीं भूत-भविष्य में तो नहीं रहती, वह तो वर्तमान में ही वर्तती है। प्रत्येक समय का वर्तमान यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला न हो तो वस्तु का त्रिकाल परिवर्तनपना सिद्ध नहीं होगा। इसलिये प्रतिसमय होने वाले उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणामों में ही वस्तु वर्तती है। जिसप्रकार द्रव्य त्रिकाली सत् है। उसीप्रकार उसके तीनों काल के परिणाम भी प्रत्येक समय के सत् हैं।

द्रव्य का वर्तमान प्रवर्तित परिणाम अपने से उत्पादक-रूप है, अपने पहले के परिणाम की अपेक्षा से व्यय-रूप है और अखण्ड प्रवाह में वह ध्रौव्य है। इसप्रकार परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है और उस परिणाम में द्रव्य वर्तता है, इसलिये द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही है। परिणाम से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने से उस परिणाम में वर्तनेवाले परिणामी के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये कहा है

कि द्रव्य को त्रिलक्षण अनुमोदना। अनुमोदना अर्थात् रुचिपूर्वक मानना, हृदय से स्वीकार करना।

यदि समय-समय के परिणाम की यह बात समझ ले तो पर में भी खटपट करने का अहंकार न रहे और अकेले रागादि परिणामों पर भी दृष्टि न रहे, किन्तु परिणामी अर्थात् त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि हो जाये।

जिसप्रकार त्रिकाली सत् में जो चैतन्य है वह चैतन्य ही रहता है और जो जड़ है वह जड़ ही रहता है, चैतन्य मिटकर जड़ नहीं होता और न जड़ मिटकर चैतन्य होता है। उसीप्रकार एक समय के सत् में भी जो परिणाम जिस समय में सत् है वह परिणाम उसी समय होता है - आगे-पीछे नहीं होता। जिसप्रकार त्रिकाली द्रव्य सत् है उसीप्रकार वर्तमान भी सत् हैं। जिसप्रकार त्रिकाली सत् पलटकर अन्यरूप नहीं हो जाता उसीप्रकार वर्तमान सत् पलटकर भी भूत या भविष्यरूप नहीं हो जाता। तीनों काल के समय-समय के वर्तमान परिणाम अपना स्वसमय (स्व-काल) छोड़कर पहले या पीछे के समय नहीं होते। जितने तीनकाल के समय हैं, उतने ही द्रव्य के परिणाम हैं, उनमें जिस समय का जो वर्तमान परिणाम है वह परिणाम अपना वर्तमानपना छोड़कर भूत या भविष्य में नहीं होता। बस! प्रत्येक परिणाम अपने-अपने स्वकाल में वर्तमान सत् है। उस सत् को कोई बदल नहीं सकता। जिसप्रकार चेतन को बदलकर जड़ नहीं किया जा सकता उसीप्रकार द्रव्य के त्रिकाली प्रवाह में उस-उस समय के वर्तमान परिणाम को आगे-पीछे नहीं किया जा सकता।

जिसप्रकार वस्तु अनादि-अनंत है। उसीप्रकार उसका प्रत्येक समय का वर्तमान भी प्रवाहरूप से अनादि-अनंत है। वस्तु और वस्तु का वर्तमान आगे-पीछे नहीं है। वस्तु सदा अपने वर्तमान में ही रहती है। कभी भी वर्तमान बिना नहीं रहती, क्योंकि तीनोंकाल में से एक भी समय

के वर्तमान को निकाल दें तो त्रिकाली वस्तु ही सिद्ध नहीं हो सकती। तीनों काल के वर्तमान का पिण्ड सो सत् द्रव्य है और तीनों काल का प्रत्येक वर्तमान परिणाम अपने अवसर में सत् है, वह अपने से उत्पाद-रूप है, पूर्व की अपेक्षा से व्ययरूप है और अखण्ड वस्तु के वर्तमान रूप से ध्रौव्यरूप है। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम सो सत् है और वह द्रव्य का स्वभाव है। ऐसे सत् को कौन बदल सकता है? सत् को जैसे का तैसा जान सकता है; किन्तु उसे कोई बदल नहीं सकता।

वस्तु के द्रव्य-गुण-पर्याय का जैसा स्वभाव है वैसा ज्ञान जानता है; अंश को अंशरूप से जानता है और त्रिकाली को त्रिकाली रूप से जानता है - ऐसा स्वभाव जानने पर अकेले अंश की रुचि न रहने से त्रिकाली स्वभाव की रुचि की ओर श्रद्धा ढल जाती है। अंश को अंशरूप से और अंशी को अंशीरूप से श्रद्धा में लेने पर श्रद्धा का सारा बल अंश पर से हटकर त्रिकाली द्रव्य-गुण की ओर ढल जाता है। यही सम्यग्दर्शन है।

यद्यपि द्रव्य, गुण और पर्याय - ये तीनों स्वज्ञेय हैं, पर एक समय में द्रव्य-गुण-पर्याय को सम्पूर्ण पिण्ड स्वज्ञेय बनाता है, क्योंकि पर्याय तो एक समयपर्यंत की है, उस पर एक समय तक ही दृष्टि टिक सकती है तथा द्रव्य त्रिकाली है उसपर दृष्टि ले जाने से ही स्थिरता बढ़ सकती है और उसकी रुचि में श्रद्धा का बल ढल जाता है। इसप्रकार द्रव्य को स्वज्ञेय बनाने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है इसलिये इस 'ज्ञेय-अधिकार' का दूसरा नाम 'सम्यक्त्व-अधिकार' भी है।

स्वज्ञेय परज्ञेय से बिलकुल भिन्न है। यहाँ राग भी स्वज्ञेय में आता है। समयसार में द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से कथन है वहाँ स्वभाव दृष्टि में राग की गौणता हो जाती है, इसलिये वहाँ तो "राग आत्मा में होता ही नहीं, राग जड़ के साथ तादात्म्य वाला है" - ऐसा कहा जाता है। वहाँ द्रव्यदृष्टि अपेक्षा से राग को पर में डाल दिया और यहाँ प्रवचनसार में

ज्ञान-अपेक्षा से कथन है, इसलिये सम्पूर्ण स्वज्ञेय बताने के लिये राग को भी स्वज्ञेय में लिया। दृष्टि-अपेक्षा से राग पर में जाता है और ज्ञान-अपेक्षा से वह स्वज्ञेय में आता है, परन्तु राग में ही स्वज्ञेय पूरा नहीं हो जाता। रागरहित द्रव्य-गुण-स्वभाव भी स्वज्ञेय है। इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को स्वज्ञेयरूप से जाना वहाँ राग में से एकत्वबुद्धि छूटकर रुचि का बल द्रव्य की ओर ढल गया। अकेले राग को सम्पूर्ण तत्त्व स्वीकार करने से स्वज्ञेय सम्पूर्ण प्रतीति में नहीं आता था और द्रव्य-गुण-पर्यायरूप सम्पूर्ण स्वज्ञेय की प्रतीति होने से उस प्रतीति का बल त्रिकाली की ओर बढ़ जाता है, इसलिये त्रिकाली की मुख्यता होकर उस ओर रुचि का बल ढलता है। इसप्रकार इसमें भी द्रव्यदृष्टि आ जाती है।

स्वद्रव्य-गुण-पर्याय - ये सब मिलकर स्वज्ञेय हैं, राग भी स्वज्ञेय है, किन्तु ऐसा जानने से रुचि का बल राग से हटकर अंतर में ढल जाता है। जो ज्ञान त्रिकाली तत्त्व को भूलकर मात्र प्रकट अंश को ही स्वीकार करता था; वह मिथ्याज्ञान था। जब से उपयोग द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को ज्ञेयरूप जानकर अव्यक्त-शक्तिरूप अंतस्वभावोन्मुख हो तभी स्वज्ञेय को पूर्ण प्रतीति में लिया माना जाता है और तभी उसने भगवान कथित द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप जाना - ऐसा कहा जाता है।

जैसे, गुड़ को गुड़रूप जाने और विष को विषरूप जाने तो ही वह ज्ञान सही है। यदि गुड़ को विषरूप जाने और विष को गुड़रूप जाने तो वह ज्ञान सही नहीं है, मिथ्या है। उसीप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों मिलकर एक समय में सम्पूर्ण स्वज्ञेय है; उसमें द्रव्य को द्रव्यरूप जाने, गुण को गुणरूप जाने और पर्याय को पर्यायरूप जाने तो ही ज्ञान सच्चा है। जैसा है वैसा न जाने या क्षणिक पर्याय को ही सम्पूर्ण तत्त्व मान लें अथवा क्षणिक पर्याय को सर्वथा ही जाने - तो वह ज्ञान सच्चा नहीं होता। पदार्थ के सच्चे ज्ञान बिना श्रद्धा भी सच्ची नहीं होती और ज्ञान-श्रद्धान बिना

सम्यक्चारित्र, वीतरागता या मुक्ति नहीं होती।

त्रिकाली तत्त्व की रुचि की ओर उन्मुख होकर सम्पूर्ण स्वज्ञेय प्रतीति में आया तब परज्ञेय को जानने को ज्ञान की यथार्थ शक्ति विकसित हुई। ज्ञान की जो वर्तमान दशा रागसन्मुख होकर उसे ही सम्पूर्ण स्वज्ञेय मानती थी, वह ज्ञानपर्याय मिथ्या थी, उसमें स्वपरप्रकाशक ज्ञानसामर्थ्य नहीं थी। तथा जब ज्ञान की वर्तमान पर्याय अन्दर की सम्पूर्ण वस्तु को ज्ञेय बनाकर उस ओर सन्मुख हो जाती है तब वह ज्ञान सम्यक् होता है और उसमें स्वपरप्रकाशक शक्ति विकसित होती है।

परिणाम के प्रवाहक्रम में वर्तनेवाला द्रव्य है - जहाँ ऐसा निश्चित किया वहाँ रुचि का बल उस द्रव्य की ओर ढलने से रुचि सम्यक् हो जाती है। उस पर्याय में राग का अंश वर्तता है वह भी ज्ञान के ख्याल से बाहर नहीं है, ज्ञान उसे स्व-ज्ञेयरूप से स्वीकार करता है। इसप्रकार सम्पूर्ण स्वज्ञेय को (द्रव्य गुण को तथा विकारी-अविकारी पर्यायों को) स्वीकार करने से रुचि तो द्रव्य-गुण-पर्याय की ओर उन्मुख होकर सम्यक् हो जाती है और ज्ञान में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का सच्चा ज्ञान हो जाता है।

ज्ञेय के तीनों अंशों को (द्रव्य-गुण-पर्याय को) स्वीकार करे वह ज्ञान सम्यक् है, एक अंश को ही (राग को ही) स्वीकार करे तो वह ज्ञान मिथ्या है और सर्वथा राग रहित स्वीकार करे तो वह ज्ञान भी मिथ्या है, क्योंकि राग-परिणाम भी साधक के वर्तते हैं, उन राग-परिणामों को स्व-ज्ञेयरूप से न जाने तो रागपरिणाम में वर्तनेवाले द्रव्य को भी नहीं माना - ऐसा माना जायेगा।

राग परिणाम भी द्रव्य के तीनकाल के परिणाम की पद्धति में आ जाता है, रागपरिणाम कहीं द्रव्य के परिणाम की परम्परा से पृथक् नहीं है। तीनों काल के परिणामों की परम्परा में वर्तनेवाला द्रव्य स्थित है।

निगोद या सिद्ध - कोई भी परिणाम हो - सभी उत्पाद-व्यय-

ध्रौव्यरूप हैं और उन परिणामों में द्रव्य वर्त रहा है। परिणामों की जो रीति है, जो क्रम है - जो परम्परा है - जो स्वभाव है, उनमें द्रव्य अवस्थित है। वह द्रव्य अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणाम-स्वभाव का अतिक्रम नहीं करता। यहाँ “स्वभाव” कहने से शुद्ध परिणाम ही नहीं समझना, किन्तु विकारी या अविकारी समस्त परिणाम द्रव्य के स्वभाव हैं और वे सब स्वज्ञेय में आ जाते हैं और जो ऐसा जान लेता है, उसे शुद्धपरिणाम की उत्पत्ति होने लगती है। स्वज्ञेय में परज्ञेय नहीं है और परज्ञेय नहीं है - ऐसा जानने में ही वीतरागी श्रद्धा आती है; क्योंकि मेरा स्वज्ञेय परज्ञेयों से भिन्न है - ऐसा निर्णय करने से किसी भी परज्ञेय के अवलम्बन का अभिप्राय नहीं रहा। इसलिये स्वद्रव्य के अवलम्बन से सम्यक्श्रद्धा हो जाती है। सम्पूर्ण द्रव्य परिणामी और उसका एक अंश भी परिणाम सम्पूर्ण परिणामी द्रव्य की अंतर्दृष्टि बिना परिणाम अंश का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता। परिणामों की परम्परा को द्रव्य नहीं छोड़ता, द्रव्य उस परम्परा में ही वर्तता है - ऐसे निर्णय से लक्ष्य का बल द्रव्य पर ही है। इसप्रकार इसमें भी द्रव्यदृष्टि आ जाती है।

द्रव्य तो अनंतशक्ति का त्रिकाली पिण्ड है और परिणाम तो एक समयपर्यंत का अंश है - जहाँ ऐसा जाना वहाँ श्रद्धा का बल अनंतशक्ति के पिण्ड की ओर ढल गया इससे द्रव्य की प्रतीति हुई और द्रव्य पर्याय दोनों का यथार्थ ज्ञान हुआ।

प्रत्येक वस्तु अपने परिणाम-स्वभाव में वर्त रही है, उस परिणाम के तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक) हैं, इसलिये उस परिणाम में प्रवर्तित वस्तु में भी यह तीनों लक्षण आ जाते हैं, क्योंकि वस्तु का अस्तित्व परिणाम-स्वभाव से पृथक् नहीं है। वस्तु “है” ऐसा कहते ही उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आ जाते हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बिना “वस्तु है” - ऐसा सिद्ध नहीं होता। परिणाम “है” ऐसा कहने से वह परिणाम

भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। अस्तित्व (सत्) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के बिना नहीं होता, इसलिये सत्त्व को त्रिलक्षण अनुमोदना।

पहले यथार्थ श्रवण करके वस्तु को बराबर जाने कि - “यह ऐसा ही है” तो ज्ञान निःशंक हो और ज्ञान निःशंक हो तभी अंतर में उसका मंथन करके निर्विकल्प अनुभव करे; किन्तु जहाँ ज्ञान ही मिथ्या हो और “ऐसा होगा या वैसा” - ऐसी शंका में झूलता हो वहाँ अन्तर में मंथन कहाँ से होगा? निःशंक ज्ञानरहित मंथन भी मिथ्या होता है, अर्थात् मिथ्याज्ञान और मिथ्याश्रद्धा होती है। पहले वस्तु स्थिति क्या है, वह बराबर ध्यान में लेना चाहिये। वस्तु को बराबर ध्यान में लिये बिना किसका मंथन करेगा?

वस्तु परिणाम का उल्लंघन नहीं करती, क्योंकि परिणाम सत् है। यदि वस्तु परिणाम का उल्लंघन करे तब तो “सत्” का ही उल्लंघन; हो जायेगा। और वस्तु “है” - ऐसा सिद्ध नहीं होगा। जबकि वस्तु तीनों काल के परिणाम के प्रवाह में वर्तती है।

अहो, यह तो सम्पूर्ण ज्ञेय को प्रतीति में लेने का मार्ग है। इसे चाहे सम्यक् नियतिवाद कहो या यथार्थ मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ कहो, वीतरागता कहो अथवा धर्म कहो - सब इसमें आ जाता है।

आचार्यदेव कहते हैं कि वस्तु का स्वभाव ही यही है। जो ऐसे स्वभाव को जाने, उसे अपूर्व आनंद प्रगट हुए बिना न रहे। जहाँ वस्तु को त्रिलक्षण जाना, वहाँ आत्मा स्वयं सम्यक् स्वभाव में ढले बिना नहीं रहता तथा वस्तु सम्यक्-स्वभावरूप परिणमित होने पर अपूर्व आनंद का अनुभव होता ही है। इसलिये यहाँ कहा है कि ऐसे वस्तु स्वभाव को आनंद से मान्य करना।

देखो, वस्तु परिणाम का उल्लंघन नहीं करती, इसलिये वस्तु पर ही दृष्टि गई, परिणाम-परिणामी की एकता हुई, इसलिये सम्पूर्ण सत् एकाकार हो गया - सम्पूर्ण स्व-ज्ञेय अभेद हो गया। जो ऐसे स्वज्ञेय को जाने और

माने उसे वस्तुस्वभाव की सम्यक्प्रतीति और अपूर्व आनंद का अनुभव हुए बिना नहीं रहता।

जिसप्रकार केवलज्ञानी लोकालोक-ज्ञेय को सत् रूप से जानता है, उसीप्रकार सम्यक्दृष्टि भी उसे ज्ञेयरूप से स्वीकार करता है, और उसे जानने वाले अपने ज्ञानस्वभाव को भी वह स्व-ज्ञेयरूप से स्वीकार करता है। वहाँ उसकी रुचि स्वभाववान् अन्तरद्रव्य की ओर ढलती है, उस रुचि के बल से निर्विकल्पता हुए बिना नहीं रहती, निर्विकल्पता में आनंद का अनुभव भी साथ ही होता है।

प्रश्न :- कितने काल में कितने जीव मोक्ष में जाते हैं - ऐसी तो कोई बात इसमें नहीं आयी?

उत्तर :- इतने काल में इतने जीव मोक्ष जाते हैं - यहाँ ऐसी गिनती की मुख्यता नहीं है, किन्तु मोक्ष कैसे हो, उसकी मुख्य बात है। स्वयं ऐसे यथार्थ स्वभाव को पहिचाने तो अपने को सम्यक्त्व और वीतरागता हो, और मोक्ष हो जाये। आत्मा का मोक्ष कब होता है - ऐसी काल की मुख्यता नहीं है, किन्तु आत्मा का मोक्ष किस प्रकार होता है - यही मुख्य प्रयोजन है और इसी की यह बात चल रही है।

जिसप्रकार सत् है उसीप्रकार स्वीकार करे तो ज्ञान सत् हो और शांति आये। इस गाथा में दो सम-अंक (९९) हैं और वह भी दो नौ-नौ के। नौ प्रकार के क्षायिकभाव हैं इसलिये नौ का अंश क्षायिकभाव सूचक है और दो नौ इकट्ठे हुए इसलिये समभाव-वीतरागता बतलाते हैं, - क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र - दोनों साथ आ जायें ऐसी अपूर्व बात है। अंक तो जो हैं सो हैं, किन्तु यहाँ अपने भाव का आरोप करना है न!

वर्तमान-प्रवर्तित परिणाम में वस्तु वर्त रही है, इसलिये सम्पूर्ण वस्तु ही वर्तमान में वर्तती है। वह वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाली है। यहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहकर सत् सिद्ध करते हैं।

आत्मा सत्, जड़ सत्, एक द्रव्य के अनंत गुण सत्, तीनकाल के 'स्व-अवसर' में होनेवाले परिणाम सत्, प्रत्येक समय के परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सत्। बस, इस सत् में कोई फेरफार नहीं होता। जहाँ ऐसा स्वीकार किया वहाँ मिथ्यात्व को बदलकर सम्यक्त्व प्रगट करने की बात आ ही गई, क्योंकि जिसने ऐसा स्वीकार किया उसने अपने ज्ञायक भाव को ही स्वीकार किया और वह द्रव्य स्वभावोन्मुख हुआ वहाँ वर्तमान परिणाम में सम्यक्त्व का उत्पाद स्वतः हो जाता है और उस परिणाम में पूर्व के मिथ्यात्वपरिणाम का तो अभाव ही है। पूर्व के तीव्र पाप परिणाम वर्तमान परिणाम में बाधक नहीं होते, क्योंकि वर्तमान में उनका अभाव है। पूर्व के तीव्र पाप के परिणाम इससमय बाधक होंगे - ऐसा जिसने माना उसको वह विपरीत मान्यता बाधक होती है, किन्तु पूर्व के पाप तो उसको भी बाधक नहीं है। "पूर्व के तीव्र पाप के परिणाम इस समय बाधक होंगे" - ऐसा जिसने माना उसने द्रव्य को त्रिलक्षण नहीं जाना। यदि त्रिलक्षण द्रव्य को जाने तो उस त्रिलक्षण द्रव्य के वर्तमान उत्पाद परिणाम में पूर्व परिणाम का व्यय है, इसलिये पूर्व परिणाम बाधा देते हैं - ऐसा वह न माने, किन्तु प्रतिसमय के वर्तमान परिणाम को स्वतंत्र सत् जाने और उसकी दृष्टि, ये परिणाम जिसके हैं ऐसे द्रव्य पर जाये, इसलिये द्रव्यदृष्टि में उसे वीतरागता का ही उत्पाद होता जाये। इसप्रकार इसमें मोक्षमार्ग आ जाता है।

वीतराग या राग, ज्ञान या अज्ञान, सिद्ध या निगोद किसी भी एकसमय के परिणाम को यदि निकाल दें तो द्रव्य का सत्पना ही सिद्ध नहीं होता, क्योंकि तत् समय के परिणाम में द्रव्य वर्त रहा है, इसलिये अपने क्रमबद्ध परिणामों के प्रवाह में वर्तमान वर्त रहे द्रव्य को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही आनंद से मानना।

स्वभाव में अवस्थित द्रव्य सत् है - यह बात सिद्ध करने के लिये

प्रथम तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम कहकर स्वभाव सिद्ध किया और उस स्वभाव में द्रव्य नित्य अवस्थित है - ऐसा सिद्ध किया।

पहले परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने के लिये प्रदेशों का उदाहरण दिया था, वह परिणाम की बात तो पूर्ण हुई और अब द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को मोतियों के हार का दृष्टान्त देकर समझाते हैं।

जिसप्रकार निश्चित लम्बाई वाले लटकते हुए मोती के हार में, अपने-अपने स्थान में प्रकाशित समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होने से और पहले-पहले के मोती प्रगट न होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति का रचयिता डोरा अवस्थित होने से हार में त्रिलक्षणपना है। उदाहरणार्थ १०८ मोतियों का लटकता हुआ हार लिया जाये तो उसमें सभी मोती अपने-अपने स्थान में प्रकाशित हैं और पीछे-पीछे के स्थान में पीछे-पीछे का मोती प्रकाशित होता है, इसलिये उन मोतियों की अपेक्षा से हार का उत्पाद है तथा एक के बाद दूसरे मोती को लक्ष्य में लेने से, पहले का मोती लक्ष्य में से छूट जाता है, इसलिये पहले का मोती दूसरे स्थान पर प्रकाशित नहीं होता, इस अपेक्षा से हार का व्यय है और सभी मोतियों में परस्पर सम्बन्ध जोड़ने वाला अखण्ड डोरा होने से हार ध्रौव्यरूप है। - इसप्रकार हार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसे लक्षणवाला निश्चित होता है। हार का प्रत्येक मोती अपने-अपने स्थान में है, पहला मोती दूसरा नहीं होता, दूसरा मोती तीसरा नहीं होता। जो जहाँ है वहाँ वही है, पहले स्थान में पहला मोती है, दूसरे स्थान में दूसरा मोती है और हार का अखण्ड डोरा सर्वत्र है। मोती की माला फेरते समय पीछे-पीछे का मोती अंगुली के स्पर्श में आता जाता है उस अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि पाता है।

दृष्टान्त में अमुक लम्बाई वाला हार था, सिद्धान्त में नित्यवृत्तिवाला द्रव्य है। दृष्टान्त में लटकता हार था, सिद्धान्त में परिणामन करता हुआ

द्रव्य है। दृष्टान्त में मोतियों का अपना-अपना स्थान था, सिद्धान्त में परिणामों का अपना-अपना अवसर है - स्वकाल है।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव वाला सम्पूर्ण द्रव्य सत् है, उसमें कहीं फेरफार नहीं होता। - इसप्रकार सम्पूर्ण सत् लक्ष्य में आये बिना ज्ञान में धैर्य नहीं होता। जिसे पर में कहीं फेरफार करने की बुद्धि है उसका ज्ञान अधीर-व्याकुल है और सत् जानने से कहीं भी फेरफार की बुद्धि नहीं रही, इसलिये ज्ञान धीर होकर अपने में स्थिर हुआ - ज्ञातारूप से रह गया। ऐसा का ऐसा सम्पूर्ण द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव से सत्स्वरूप विद्यमान है - इसप्रकार द्रव्य पर दृष्टि जाने से सम्यक्त्व का उत्पाद और मिथ्यात्व का व्यय हुआ और आगे भी उस द्रव्य की सन्मुखता से क्रमशः वीतरागता की वृद्धि होती जाती है। बस, यही धर्म प्रगट होने की रीति है।

प्रत्येक द्रव्य नित्य स्थायी है, नित्य स्थायी द्रव्य लटकते हुए हार की भाँति सदैव परिणमित होता है, उसके परिणाम अपने-अपने अवसर में प्रकाशित होते हैं। जिसप्रकार माला में मोतियों का क्रम निश्चित जमा हुआ है, माला फिरने से वह क्रम उल्टा-सीधा नहीं होता। उसीप्रकार द्रव्य के तीनकाल के परिणामों का निश्चित स्व-अवसर है, द्रव्य के तीनकाल के परिणामों का अपना-अपना जो अवसर है उस अवसर में ही वे होते हैं, आगे-पीछे नहीं होते। ऐसा निश्चय करते ही ज्ञान में वीतरागता होती है। यह निश्चित करने से अनंतवीर्य पर से विमुख होकर द्रव्योन्मुख हो जाता है, पर्यायमूढ़ता नष्ट हो जाती है और द्रव्य की सन्मुखता से वीतरागता की उत्पत्ति होने लगती है। सामनेवाले पदार्थ के परिणाम उसके अवसर के अनुसार और मेरे परिणाम मेरे अवसर के अनुसार होते हैं - ऐसा निश्चित हुआ, इसलिये पर में या स्व में कहीं भी परिणाम के फेरफार की बुद्धि न रहने से जो ज्ञान ज्ञान में ही एकाग्रता को प्राप्त हो जाता है उसी को धर्म और मोक्षमार्ग कहते हैं।

एक ओर केवल ज्ञान और दूसरी ओर सामने द्रव्य के तीनकाल के स्व-स्व-अवसर में होने वाले समस्त परिणामों में फेरफार होना सम्भव ही नहीं है, क्योंकि “द्रव्य के परिणाम में फेरफार नहीं होता”। ऐसी वस्तुस्थिति की प्रतीति करने से ही ज्ञान में धैर्य आ जाता है और जहाँ ज्ञान स्वोन्मुख होने लगा वहाँ मोक्षपर्याय होते देर नहीं लगती। इसप्रकार क्रमबद्धपर्याय की प्रतीति में मोक्षमार्ग आ जाता है।

द्रव्य के समस्त परिणाम स्व-अवसर में प्रकाशित होते हैं, यह सामान्यरूप से बात की। अब उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को घटाते हैं। द्रव्य जब भी देखो तभी वर्तमान परिणाम में वर्तता है। जिस काल के जो परिणाम हैं, उस काल में वे ही प्रकाशित होते हैं - उनके पहले के परिणाम उस समय प्रकाशित नहीं होते। पहले परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करते समय “वर्तमान परिणाम पूर्वपरिणाम के व्ययरूप है - ऐसा कहा था और यहाँ द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने में कथनशैली में परिवर्तन करके ऐसा कहा कि “वर्तमान परिणाम के समय पूर्व के परिणाम प्रगट नहीं होते, इसलिये उन पूर्व परिणामों की अपेक्षा से द्रव्य व्ययरूप है। जिसपरिणाम में द्रव्य वर्त रहा हो उसपरिणाम की अपेक्षा द्रव्य उत्पादरूप है, उसके पूर्व के परिणाम, जो कि इस समय प्रगट नहीं हैं, उनकी अपेक्षा से द्रव्य व्ययरूप है और समस्त परिणामों में अखण्ड रहते हुए द्रव्य के प्रवाह की अपेक्षा से वह ध्रौव्यरूप है। इसप्रकार द्रव्य का त्रिलक्षणपना ज्ञान में निश्चित होता है। ज्ञेयों का इसप्रकार निर्णय करने वाला ज्ञान स्व में स्थिर होता है, इसी का नाम तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है।

मोतियों की माला लेकर जप कर रहा हो उनमें पहले एक मोती अंगुली के स्पर्श में आता है और फिर वह छूटकर दूसरा मोती स्पर्श में आता है। उस समय पहला मोती स्पर्श में नहीं आता, इसलिये पहले

मोती के स्पर्श की अपेक्षा से माला का व्यय हुआ, दूसरे मोती के स्पर्श की अपेक्षा माला का उत्पाद हुआ और “माला” रूप से प्रवाह चालू रहा, इसलिये माला ध्रौव्य रहा। इसप्रकार एक के पश्चात् एक-क्रमशः होनेवाले परिणामों में वर्तनेवाले द्रव्य में भी उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य घटित हो जाता है।

यदि कोई ऐसा प्रश्न करे कि - उत्पाद-व्यय तो पर्याय के ही होते हैं और द्रव्य ध्रौव्यरूप ही होता है, उसमें परिणमन नहीं होता? तो उसका समाधान यह है कि द्रव्य एकान्त नित्य नहीं है, किन्तु नित्य-अनित्यस्वरूप है, इसलिये परिणाम बदलने से उन परिणामों में वर्तनेवाला द्रव्य भी परिणमित होता है। परिणाम का उत्पाद-व्यय होने से द्रव्य भी उत्पाद-व्ययरूप परिणमित होता ही है। द्रव्य के परिणमन के बिना परिणाम के उत्पाद-व्यय नहीं होंगे और द्रव्य की अखण्ड ध्रौव्यता भी निश्चित नहीं होगी, इसलिये द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही है। **“पर्याय में ही उत्पाद-व्यय हैं और द्रव्य तो ध्रौव्य ही रहता है, उसमें उत्पाद-व्यय होते ही नहीं” - ऐसा नहीं है।** परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में प्रवर्तमान द्रव्य भी एक समय में त्रिलक्षणवाला है।

अहो! स्व या पर - प्रत्येक द्रव्य के परिणाम अपने-अपने काल में होते हैं। परद्रव्य के परिणाम उस द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से होते हैं, और मेरे परिणाम मेरे द्रव्य में से क्रमानुसार होते हैं - ऐसा निश्चित करने से पर द्रव्य के ऊपर से दृष्टि हट गई और स्वोन्मुख हुआ। अब स्व में भी पर्याय पर से दृष्टि हट गई, क्योंकि उस पर्याय में से पर्याय प्रगट नहीं होती; किन्तु द्रव्य में से पर्याय प्रगट होती है, इसलिये द्रव्य पर दृष्टि गई। उसे त्रिकाली सत् की प्रतीति हुई। ऐसी त्रिकाली सत् की प्रतीति होने से द्रव्य अपने परिणाम में स्वभाव की धारारूप बहता हुआ और विभाव की धारा का नाश करता हुआ परिणमन करता है, इसलिये द्रव्य त्रिलक्षणरूप ही है।

पहले परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात की थी और यहाँ द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात की है।

द्रव्य की सत्ता अर्थात् द्रव्य का अस्तित्व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। मात्र उत्पादरूप, व्ययरूप या ध्रौव्यरूप द्रव्य की सत्ता नहीं है, किन्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसी तीन लक्षणवाली ही द्रव्य की सत्ता है। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य - ऐसी तीन पृथक्-पृथक् नहीं हैं, किन्तु वे तीनों मिलकर एक सत्ता है।

पहले तो यह कहा था, जो परिणाम उत्पन्न हुए वे अपनी अपेक्षा से उत्पादरूप, पूर्व की अपेक्षा से व्ययरूप और अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से ध्रौव्यरूप हैं - और यहाँ तो अब अन्तिम योगफल निकालकर द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उतारते हुए ऐसा कहा है कि - द्रव्य में पीछे-पीछे के परिणाम प्रगट होते हैं, इससे द्रव्य का उत्पाद है, पहले-पहले के परिणाम उत्पन्न नहीं होते इसलिये द्रव्य व्ययरूप है, और द्रव्य सर्वपरिणामों में अखण्डरूप से प्रवर्तमान होता है इसकारण द्रव्य ही ध्रौव्य है। इसप्रकार द्रव्य को विलक्षण अनुमोदना।

अहो! समस्त द्रव्य अपने वर्तमान परिणामरूप से उत्पन्न होते हैं, पूर्व के परिणाम वर्तमान में नहीं रहते इसलिये पूर्व परिणामरूप से व्यय को प्राप्त है और अखण्डरूप से समस्त परिणामों के प्रवाह में द्रव्य ध्रौव्यरूप से वर्तते हैं। बस, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप से वर्तते हुए द्रव्य टंकोत्कीर्ण सत् है। ऐसे सत् में कुछ भी आगे पीछे नहीं होता। अपने ज्ञान में ऐसे टंकोत्कीर्ण सत् को स्वीकार करने से, फेरफार करने की बुद्धि तथा “ऐसा क्यों” ऐसी विस्मयता दूर हई, उसी में सम्यक्श्रद्धा और वीतरागता आ गई। इसलिये ज्ञायकपना मोक्ष का मार्ग हुआ।

यह “वस्तुविज्ञान” कहा जा रहा है। पदार्थ का जैसा स्वभाव है वैसा ही उसका ज्ञान करना सो पदार्थ-विज्ञान है। ऐसे पदार्थविज्ञान के बिना

कभी शान्ति नहीं होती।

जहाँ, प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव वाली है - ऐसा जाना वहाँ वस्तु के भिन्नत्व की बाड़ बन्ध गई। मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में पर का अभाव है और पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में मेरा अभाव है, मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय में मैं और पर के द्रव्य-गुण-पर्याय में पर - ऐसा निश्चित करने से पर के द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वामित्व छोड़कर स्वयं अपने द्रव्य-गुण-पर्याय का रक्षक हुआ। स्व-द्रव्योन्मुख होने से स्वयं अपने द्रव्य-गुण-पर्याय का रक्षक हुआ अर्थात् ध्रौव्य द्रव्य के आश्रय से निर्मल पर्याय का उत्पाद होने लगा, वही धर्म है। पहले, 'पर को मैं बदल दूँ' - ऐसा मानता था तब पराश्रयबुद्धि से विकारभावों की ही उत्पत्ति होती थी और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की रक्षा नहीं करता था, इसलिये वह अधर्म था।

आचार्य भगवान ने इस गाथा में सत् को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त बतलाकर अद्भुत बात की है। यह बात वर्तमान समय के परिणाम की है, क्योंकि सम्पूर्ण द्रव्य वर्तमान परिणाम में साथ ही वर्त रहा है। आशय यह है कि परिणाम और द्रव्य दोनों साथ ही हैं। द्रव्य कभी भी परिणाम से रहित नहीं होता, परिणाम कभी भी द्रव्य से रहित नहीं होता। परिणाम वर्तमान में हो और द्रव्य गतकाल में रह जाये - ऐसा नहीं होता तथा द्रव्य है, किन्तु परिणाम नहीं है - ऐसा भी नहीं होता। इसलिये परिणाम और द्रव्य दोनों वर्तमान में साथ ही है - ऐसा समझना। द्रव्य में अपने स्वकाल में सदैव वर्तमान परिणाम होते हैं, जब देखो तब द्रव्य अपने वर्तमान परिणाम में ही वर्त रहा है, ऐसे वर्तमान में प्रवर्तमान द्रव्य की प्रतीति सो वीतरागता का मूल है।

“परिणाम का स्व-अवसर” ऐसा जो कहा वहाँ परिणाम का जो वर्तन है, वही उसका अवसर है उस समय वही परिणाम वर्तता है, उस परिणाम में वर्तता हुआ, द्रव्य उत्पादरूप है, उससे पूर्व के परिणाम में द्रव्य नहीं वर्तता इससे वह व्ययरूप है और सर्वत्र अखण्डपने की अपेक्षा

से द्रव्य ध्रौव्य है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप त्रिलक्षणपना सिद्ध होता है।

जीव और अजीव समस्त द्रव्य और उनके अनादि-अनन्त परिणाम सत् हैं, वह सत् स्वयंसिद्ध है, उसका कोई दूसरा रचयिता या परिणामन करानेवाला नहीं है। जिसप्रकार कोई द्रव्य अपना स्वरूप छोड़कर अन्यरूप नहीं होता, उसीप्रकार द्रव्य का कोई परिणाम भी आगे-पीछे नहीं होता। द्रव्य में अपने-अपने स्वकाल में परिणाम उत्पन्न होते हैं, पूर्व के परिणाम उत्पन्न नहीं होते और द्रव्य अखण्ड धारारूप बना रहता है। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाववाले द्रव्य को जानने से अपने ज्ञायकस्वभाव की प्रतीति होती है और उस ज्ञायकस्वभाव की सन्मुखता से भगवान आत्मा स्वभावधारा में बहता है, विभावधारा से व्यय को प्राप्त होता है और उस प्रवाह में स्वयं अखण्डरूप से ध्रुव रहता है। इसप्रकार वीतरागता होकर केवलज्ञान और मुक्ति होती है।

अहो! मुक्ति के कारणभूत ऐसा लोकोत्तर वस्तुविज्ञान समझाने वाले संतों को शत-शत वन्दन हो।

गाथा ९९ के भावार्थ पर प्रवचन

प्रत्येक द्रव्य सदैव स्वभाव में रहता है इसलिये “सत्” है। स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है। प्रत्येक वस्तु तीनोंकाल अपने स्वभाव में अर्थात् अपने परिणाम में रहती है। जिसप्रकार सुवर्ण अपने कुण्डल, हार आदि परिणामों में वर्तता है, कुण्डल, हार आदि परिणामों से सुवर्ण पृथक् नहीं वर्तता, उसीप्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने वर्तमान में वर्तते हैं, अपने परिणाम से पृथक् कोई द्रव्य नहीं रहता। कोई भी पदार्थ अपने परिणामस्वभाव का उल्लंघन करके पर के परिणाम का स्पर्श नहीं करता, और परवस्तु उसके परिणाम का उल्लंघन करके अपने को स्पर्श नहीं करती। प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न अपने-अपने परिणाम में ही रहती है। आत्मा अपने ज्ञान या रागादि परिणाम में स्थित है, किन्तु शरीर की

अवस्था में आत्मा विद्यमान नहीं है। शरीर की अवस्था में पुद्गल विद्यमान है। शरीर के अनंत रजकणों में भी वास्तव में प्रत्येक रजकण भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी अवस्था में विद्यमान है। ऐसा वस्तुस्वभाव देखनेवाले को पर में कहीं भी एकत्वबुद्धि नहीं होती और पर्यायबुद्धि के राग-द्वेष नहीं होते।

आत्मा और अन्य सभी पदार्थ प्रतिसमय अपनी नयी अवस्थारूप उत्पन्न होते हैं, पुरानी अवस्था रूप से व्यय को प्राप्त होते हैं और अखण्ड वस्तुरूप से ध्रौव्य रहते हैं। प्रत्येक समय के परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हैं, वे परिणाम स्वभाव हैं और द्रव्यवान् हैं। स्वभाववान् द्रव्य अपने परिणामस्वभाव में स्थित है। कोई भी वस्तु या द्रव्य अपना स्वभाव छोड़कर दूसरे के स्वभाव में वर्ते या दूसरे के स्वभाव को करे - ऐसा उनमें नहीं वर्तता, तथापि 'आत्मा उस शरीर की अवस्था में कुछ करता है' - ऐसा जिसने माना उसकी मान्यता मिथ्या है। जिसप्रकार अफीम की कड़वाहट आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणाम में अफीम ही विद्यमान है, उसमें कहीं गुड़ विद्यमान नहीं है और गुड़ के मिठास आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणाम में गुड़ ही विद्यमान है, उसमें अफीम विद्यमान नहीं है। उसीप्रकार आत्मा के ज्ञान आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणाम स्वभाव में आत्मा ही विद्यमान है, उनमें इन्द्रियाँ या शरीरादि विद्यमान नहीं हैं, इसलिये उनसे (इन्द्रियों या शरीरादि से) आत्मा ज्ञात नहीं होता और पुद्गल के शरीर आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणाम स्वभाव में पुद्गल ही विद्यमान है, उनमें आत्मा विद्यमान नहीं है, इसलिये आत्मा शरीरादि की क्रिया नहीं करता। इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वभाव में ही विद्यमान है। बस, ऐसे पदार्थ के स्वभाव को जानना ही वीतरागी विज्ञान है, उसी में धर्म प्रगट होता है।

प्रत्येक पदार्थ की मर्यादा-सीमा अपने-अपने स्वभाव में रहने की है, अपने स्वभाव की सीमा से बाहर निकलकर पर में कुछ करने की किसी

पदार्थ में शक्ति ही नहीं है - ऐसी वस्तुस्थिति में ही प्रत्येक तत्त्व अपने स्वतंत्र अस्तित्व रूप से रह सकता है। यही बात अस्ति-नास्तिरूप अनेकान्त से कही जाये तो प्रत्येक पदार्थ अपने स्व-चतुष्टय से (द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से) अस्तिरूप है और पर के चतुष्टय से वह नास्तिरूप है। इसप्रकार प्रत्येक तत्त्व भिन्न-भिन्न स्थित है - ऐसा निश्चित करने से स्वतत्त्व को परतत्त्व से भिन्न जाना और अपने स्वभाव में प्रवर्तमान स्वभाववान् द्रव्य की दृष्टि हुई, यही सम्यक् रुचि, सम्यक्ज्ञान और वीतरागता का कारण है।

जैसी वस्तु हो उसे वैसा ही जानना तो सम्यग्ज्ञान है। जिसप्रकार लौकिक में गुड़ को गुड़ जाने और अफीम को अफीम जाने तो गुड़ और अफीम का सच्चा ज्ञान है, किन्तु यदि गुड़ को अफीम जाने या अफीम को गुड़ जाने तो वह मिथ्याज्ञान है। उसीप्रकार जगत् के पदार्थों में जड़-चेतन सभी स्वतंत्र हैं। प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव में स्थित है - ऐसा जानना सो सम्यक्ज्ञान है और एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के कारण कुछ होता है - ऐसा मानना मिथ्याज्ञान है, क्योंकि उसने पदार्थ के स्वभाव को जैसा है वैसा नहीं जाना, किन्तु विपरीत माना है।

आत्मा का "ज्ञायक" स्वभाव है और पदार्थों का "ज्ञेय" स्वभाव है, पदार्थों में फेरफार आगे-पीछे हो - ऐसा उनका स्वभाव नहीं है और उनके स्वभाव में कुछ फेरफार करे ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है। जिसप्रकार आँख अफीम को अफीम रूप से और गुड़ को गुड़ रूप से देखती है, किन्तु अफीम को बदल कर गुड़ नहीं बनाती और गुड़ को बदल कर अफीम नहीं बनाती और वह अफीम भी अपना स्वभाव छोड़कर गुड़रूप नहीं होती तथा गुड़ भी अपना स्वभाव छोड़कर अफीमरूप नहीं होता। उसीप्रकार आत्मा का ज्ञानस्वभाव समस्त स्व-परज्ञेयों को यथावत् जानता है, किन्तु उनमें कहीं कुछ भी फेरफार नहीं करता और ज्ञेय भी अपने

स्वभाव को छोड़कर अन्यरूप नहीं होते। बस, ज्ञान और ज्ञेय के ऐसे स्वभाव की प्रतीति ही वीतरागी श्रद्धा है, और ऐसा ही वीतरागी विज्ञान है।

स्वतंत्र ज्ञेयों को यथावत् जानना सम्यक्ज्ञान की क्रिया है। ज्ञान जानने का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त वह कहीं फेरफार करने का कार्य नहीं करता। प्रत्येक पदार्थ स्वयंसिद्ध सत् है, और उसमें पर्यायधर्म है, वे पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाववाली हैं। इसलिये पदार्थ में प्रतिसमय पर्याय के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं, उनमें वह पदार्थ वर्त रहा है। इसप्रकार स्वतंत्र द्रव्य स्वभाव को जानना सम्यग्ज्ञान है। यदि प्रत्येक पर्याय की स्वतंत्रता को न जाने तो उसने द्रव्य की स्वतंत्रता को भी नहीं जाना है, क्योंकि “सत्” का स्वभाव अपने ही परिणाम में प्रवर्तन करने का है। सत् स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। सत् के अपने परिणाम का उत्पाद यदि दूसरे से होता हो तो वह स्वयं “उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्” ही नहीं रहता। इसलिये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है - ऐसा मानते ही परिणाम की स्वतंत्रता की स्वीकृति तो आ ही गई तथा परिणाम परिणाम में से नहीं, किन्तु परिणामी (द्रव्य) में से आते हैं, इसलिये उसकी दृष्टि परिणामी पर गई, वह स्वद्रव्य के सन्मुख हुआ, स्वद्रव्य की सन्मुखता में जो सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति होती है, वही मोक्ष का कारण है।

प्रश्न :- सोना और तांबा - दोनों का मिश्रण होने पर तो वे एक-दूसरे में एकमेक हो गये हैं न?

उत्तर :- भाई! वस्तुस्थिति को समझो। सोना और तांबा कभी एकमेक होते ही नहीं। संयोगदृष्टि से सोना और तांबा एकमेक हुए ऐसा कहा जाता है, किन्तु पदार्थ के स्वभाव की दृष्टि से तो सोना और तांबा कभी एकमेक हुए ही नहीं है, क्योंकि जो सोने के रजकण हैं वे अपने सुवर्ण-परिणाम में ही वर्तते हैं और जो तांबे के रजकण हैं वे अपने तांबा-परिणाम में ही वर्तते हैं, एक रजकण दूसरे रजकण के परिणाम में नहीं वर्तता। सोने के दो रजकणों में से भी उसका एक रजकण दूसरे में नहीं

वर्तता। यदि एक पदार्थ दूसरे में और दूसरा तीसरे में मिल जाये तब तो जगत् में कोई स्वतंत्र वस्तु ही न रहे। सोना और तांबा “मिश्र हुआ” ऐसा कहने से भी उन दोनों की भिन्नता ही सिद्ध होती है, क्योंकि “मिश्रण” दो का होता है, एक में “मिश्रण” नहीं कहलाता। इसलिये मिश्रण कहते ही पदार्थों का भिन्न-भिन्न अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

प्रत्येक वस्तु अपने स्वभावरूप से सत् रहती है, दूसरा कोई विपरीत माने तो उससे कहीं वस्तु का स्वभाव बदल नहीं जाता। कोई अफीम को गुड़ माने तो इससे कहीं अफीम की कड़वाहट दूर नहीं हो जायेगी, अफीम को गुड़ मानकर खाये तो उसे कड़वाहट का ही अनुभव होगा। उसीप्रकार तत्त्व को जैसे का तैसा स्वतंत्र न मानकर पर के आधार से स्थित माने तो, कहीं वस्तु तो पराधीन नहीं हो जाती, किन्तु उसने सत् की विपरीत मान्यता की, इसलिये उसका ज्ञान ही मिथ्या होता है और उस मिथ्याज्ञान के फल में उसे चौरासी का अवतार होता है। कोई जीव पुण्य का शुभराग करके ऐसा माने कि मैं धर्म करता हूँ, तो कहीं उसे राग से धर्म नहीं होगा, किन्तु उसने वस्तुस्वरूप को विपरीत जाना है, इसलिये उस अज्ञान के फल में उसे चौरासी के अवतार में परिभ्रमण करना पड़ेगा।

परिणाम स्वभाव है और द्रव्य स्वभाववान् है - ऐसा जानकर स्वभाववान् द्रव्य की रुचि होते ही उसीसमय सम्यक्त्व का उत्पाद, मिथ्यात्व का व्यय और अखण्डरूप से आत्मा की ध्रुवता है।

प्रत्येक वस्तु ‘सत्’ है ‘सत्’ त्रिकाल स्वयंसिद्ध है। यदि सत् त्रिकाली न हो तो वह असत् सिद्ध होगा। वस्तु कभी असत् नहीं होती। वस्तु त्रिकाल है, इसलिये उसका कोई कर्ता नहीं है, क्योंकि त्रिकाली का रचयिता नहीं होता। यदि रचयिता कहो तो, उससे पूर्व वस्तु नहीं थी - ऐसा सिद्ध होगा, अर्थात् वस्तु का नित्यपना नहीं रहेगा। वस्तु त्रिकाल सत् है और वह वस्तु परिणामस्वभाववाली है। त्रिकाली द्रव्य ही अपने तीनों काल के वर्तमान-परिणामों की रचना करता है। वे परिणाम भी

स्व-अवसर में सत् हैं, इसलिये उन परिणामों का रचयिता भी दूसरा कोई नहीं है। जिसप्रकार त्रिकाली द्रव्य का कर्ता कोई ईश्वर आदि नहीं है, उसीप्रकार उस त्रिकाली द्रव्य के वर्तमानपरिणाम का कर्ता भी कोई दूसरा निमित्त, कर्म या जीव आदि नहीं है। द्रव्य अपने प्रत्येक समय के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में स्थित रहता है, इसलिये सत् है। यदि द्रव्य दूसरे के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में स्थित रहता है, इसलिये सत् है। यदि द्रव्य दूसरे के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का अवलम्बन करे तो वह स्वयं सत् नहीं रह सकता। इसलिये जो जीव द्रव्य को यथार्थतया 'सत्' जानता हो, वह द्रव्य का या द्रव्य की किसी पर्याय का कर्ता दूसरे को नहीं मानता। जो जीव द्रव्य का या द्रव्य की किसी पर्याय का कर्ता दूसरे को माने, उस जीव ने वास्तव में 'सत्' को नहीं जाना है।

अहो! वस्तु के सत्स्वभाव को जाने बिना बाह्य क्रिया-काण्ड के लक्ष्य से अनंतकाल बिता दिया, किन्तु वस्तु का सत्स्वभाव नहीं जाना, इसलिये संसार में परिभ्रमण कर रहा है।

वस्तु अपने परिणाम में परिणमन करती है, वह परिणाम से पृथक् नहीं रहती। प्रत्येक समय के परिणाम के समय सम्पूर्ण वस्तु साथ में वर्त रही है - ऐसा जाने तो अपने को क्षणिक राग जितना न मानकर उसी समय अन्तर के स्वभाव से सम्पूर्ण वस्तु रागरहित विद्यमान है। उसका विश्वास करते ही राग की रुचि का बल टूट कर सम्पूर्ण वस्तु पर रुचि का बल ढल जाता है, राग और आत्मा का भेदज्ञान हो जाता है। 'मैं पर में नहीं वर्तता, मेरे परिणाम में परवस्तु नहीं वर्तती, किन्तु मैं अपने परिणाम में ही वर्तता हूँ' - इसप्रकार परिणाम और परिणामी की स्वतंत्रता जानने से रुचि पर में नहीं जाती, परिणाम पर भी नहीं रहती, किन्तु परिणामी द्रव्य में प्रविष्ट हो जाती है।

'वस्तु परिणाम से वर्तती है' - ऐसा निश्चित करने में पर्यायबुद्धि दूर

होकर द्रव्यदृष्टि हो जाती है, उसी में वीतरागता विद्यमान है। मेरी भविष्य की केवलज्ञान पर्याय में भी यह द्रव्य ही वर्तेगा, इसलिये भविष्य की केवलज्ञानपर्याय को देखना भी नहीं रहा। द्रव्य की सन्मुखता में अल्पकाल में केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहता।

अहो! मैं अपने परिणामस्वभाव में हूँ, परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-स्वरूप है, उसी में आत्मद्रव्य वर्तता है - इसप्रकार स्व-वस्तु की दृष्टि होने से पर से लाभ-हानि मानने का मिथ्यात्व नहीं रहता। वहाँ सम्यग्ज्ञान पर्यायरूप से उत्पाद है, मिथ्याज्ञान पर्यायरूप से व्यय है और ज्ञान में अखण्ड परिणामरूप से ध्रौव्यता है। इसप्रकार इसमें धर्म आ जाता है।

'परिणामी के परिणाम हैं' - ऐसा न मानकर जिसने पर के कारण परिणामों को माना उसने परिणामी को दृष्टि में ही नहीं लिया, किन्तु अपने परिणाम का कर्ता पर है - ऐसा माना, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। परिणाम परिणामी के हैं - इसप्रकार परिणाम और परिणामी की स्वतंत्रता की रुचि में स्वद्रव्य की सम्यकरुचि उत्पन्न होकर मिथ्यारुचि का नाश हो जाता है।

देखो, यह वस्तुस्थिति का वर्णन है। जैनदर्शन कोई बाड़ा या कल्पना नहीं है; किन्तु वस्तुएँ जैसे स्वभाव में हैं, वैसी सर्वज्ञ भगवान ने देखी है और वही जैनदर्शन में कही है। जैनदर्शन कहो या वस्तु का स्वभाव कहो, उसका ज्ञान कर तो तेरा ज्ञान सच्चा होगा और भव का परिभ्रमण दूर होगा। यदि वस्तु के स्वभाव को विपरीत मानेगा तो असत वस्तु की मान्यता से तेरा ज्ञान मिथ्या होगा परिभ्रमण का अंत नहीं आयेगा, क्योंकि मिथ्यात्व ही सबसे महान पाप माना गया है, वही अनंत संसार का मूल है। जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम है, वह स्वभाव है और स्वभाव स्वभाववान् के कारण है। इसप्रकार स्वभाव और स्वभाववान् को दृष्टि में लेने से, पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को मैं करूँ या मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य

को पर करे - यह बात नहीं रहती। इसलिये स्वयं अपने स्वभाववान् की ओर उन्मुख होने से आत्मज्ञान उदित हो जाता है। यही तो धर्म की शुरूआत है। लोगों ने जो बाह्य आचरण में धर्म मान रखा है, वह मिथ्या मान्यता का फल है।

‘वस्तु’ उसे कहते हैं जो अपने गुण-पर्याय में वास करे, अपने गुण-पर्याय से बाहर वस्तु कुछ नहीं करती और न वस्तु के गुण-पर्याय को कोई दूसरा करता है। ऐसे भिन्न-भिन्न तत्त्वार्थ का श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। प्रथम सम्यग्दर्शन होता है, तत्पश्चात् श्रावक और मुनि के व्रतादि होते हैं। आत्मा की प्रतीति हुए बिना कहाँ रहकर व्रतादि करेगा?

जिसप्रकार गाड़ी के नीचे चलनेवाले कुत्ते को यह भ्रम रहता है कि गाड़ी मेरे कारण चल रही है, जबकि गाड़ी के परिणाम में गाड़ी का प्रत्येक प्रमाण स्वतंत्र वर्त रहा है और कुत्ते के भ्रमरूप परिणामों में कुत्ता वर्त रहा है। गाड़ी और कुत्ता एक-दूसरे के परिणाम में नहीं वर्तते। उसीप्रकार परवस्तु के परिणाम स्वयं अपने-अपने से होते हैं, परन्तु अज्ञानी जीव व्यर्थ ही ऐसा मानता है कि पर के परिणाम मुझसे होते हैं। प्रत्येक तत्त्व के परिणाम सत् हैं, उसमें कोई दूसरा क्या करेगा? ऐसा स्वतंत्र वस्तु का स्वभाव है, वही सर्वज्ञ भगवान ने ज्ञान में देखा है। जैसा भगवान ने देखा है, वैसा वस्तु के स्वभाव को होना नहीं पड़ता और जैसा वस्तु का स्वभाव है, वैसा वस्तु के स्वभाव को होना नहीं पड़ता और जैसा वस्तु का स्वभाव है, वैसा ही भगवान को जानना पड़ेगा - ऐसा भी नहीं है। अर्थात् ज्ञान ज्ञेय के आधीन नहीं और ज्ञेय ज्ञान के आधीन नहीं है। ज्ञेय वस्तु का स्वभाव स्वतंत्र सत् है, और ज्ञान भी स्वतंत्र सत् है। प्रथम ऐसे सत्स्वभाव को समझो! जो ऐसे स्वभाव को समझ ले, उसी ने वस्तु को वस्तुरूप से जाना है - ऐसा कहा जाता है।

कर्म के परिणाम में पुद्गल वर्तते हैं और आत्मा के परिणाम में आत्मा वर्तता है, कोई एक-दूसरे के परिणाम में नहीं वर्तते, इसलिए कर्म

आत्मा को परिभ्रमण कराते हैं - ऐसा माना है। इस विपरीत मान्यता से ही जीव भटक रहा है, कर्मों ने उसे नहीं भटकाया। प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होने का प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है - यह समझे तो परिणामी की द्रव्य पर दृष्टि जाती है और द्रव्यदृष्टि में सम्यक्त्व और वीतरागता का उत्पाद होता है, जिसे यथार्थ धर्मसंज्ञा प्राप्त है।

यदि द्रव्य के एकसमय का सत् दूसरे से हो तो उस द्रव्य का वर्तमान सत्पना नहीं रहता और वर्तमान सत् का नाश होने से त्रिकाली सत् माने बिना त्रिकाली द्रव्य का सत्पना सिद्ध नहीं होता, इसलिये द्रव्य का वर्तमान दूसरे से या निमित्तों से होता है - इस मान्यता में मिथ्यात्व होता है, क्योंकि उसमें सत् की स्वीकृति नहीं आती। सत् का नाश नहीं होता, किन्तु जिसने सत् को विपरीत माना है उसकी मान्यता में सत् का अभाव होता है। त्रिकाली सत् स्वतंत्र, किसी के बनाये बिना है और प्रत्येक समय का वर्तमान सत् भी स्वतंत्र किसी के बनाये बिना है। ऐसे स्वतंत्र सत् को पराधीन मानना हो तो मिथ्यात्व और अधर्म है। लोग काला बाजार आदि में तो अधर्म मानते हैं, किन्तु विपरीत मान्यता से सम्पूर्ण वस्तुस्वरूप का घात कर डालते हैं, उस विपरीत मान्यता के महापाप की खबर नहीं है। मिथ्यात्व तो धर्म के क्षेत्र का महान काला बाजार है, उसे काले बाजार से चौरासी के अवतार की जेल होती है। सत् को जैसे का तैसा माने तो मिथ्यात्वरूपी काले बाजार का महान पाप दूर हो जाता है और सच्चा धर्म प्रगट होता है। इसलिये सर्वज्ञदेवकथित वस्तुस्वभाव को बराबर समझना चाहिये।

आत्मा का क्षेत्र असंख्यप्रदेशी एक है और उस क्षेत्र का छोटे से छोटा अंश प्रदेश है। उसीप्रकार सम्पूर्ण द्रव्य की प्रवाहधारा एक है और उस प्रवाहधारा का छोटे से छोटा अंश परिणाम है।

क्षेत्र अपेक्षा से द्रव्य का सूक्ष्म अंश प्रदेश है और काल अपेक्षा से

द्रव्य का सूक्ष्म अंश परिणाम है।

परिणाम परिणामी में से आता है। जो ऐसे परिणामी द्रव्य की दृष्टि करता है, उसे परिणामी के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम उत्पन्न होता है, स्थिर रहता है और बढ़कर पूर्ण होता है।

प्रत्येक परिणाम अपने स्वकाल में उत्पन्न होता है, पूर्व परिणाम से व्ययरूप है और अखण्ड प्रवाह में ध्रौव्य है। केवलज्ञान-परिणाम अपने स्वरूप की अपेक्षा में स्वकाल में उत्पादरूप है, पूर्व की अल्पज्ञ पर्याय की अपेक्षा व्ययरूप है और द्रव्य के अखण्ड प्रवाह में केवलज्ञानपरिणाम ध्रौव्य है। इसप्रकार समस्त परिणाम अपने-अपने वर्तमान काल में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले हैं, और उन-उन वर्तमान परिणामों में वस्तु वर्त रही है, अर्थात् वस्तु वर्तमान में ही पूर्ण है। ज्ञानी केवलज्ञान को नहीं ढूँढ़ते, उस पर दृष्टि नहीं रखते, क्योंकि वह पर्याय इस समय तो सत् नहीं है, वह तो भविष्य में अपने स्वकाल में सत् है, इसलिये ज्ञानी तो वर्तमान में सत्स्वरूप ध्रुवद्रव्य को ही ढूँढ़ते हैं, ध्रुवपर दृष्टि रखते हैं। इस अपेक्षा से नियमसार में उदय-उपशम-क्षयोपशम और क्षायिक इन चारों भावों को विभावभाव कहा है। जो पर्याय वर्तमान उत्पादरूप से वर्तती है, वह तो अंश है ही, केवलज्ञान पर्याय भी अंश है। वह केवलज्ञान पर्याय वर्तमान में प्रगट नहीं है, भविष्य में प्रगट होगी - इसप्रकार परिणाम के काल पर दृष्टि नहीं रहती। वर्तमान परिणाम के समय जो ध्रुवरूप से सम्पूर्ण द्रव्य वर्त रहा है, वह तो द्रव्य की प्रतीति करता है। द्रव्य की दृष्टि होने से वीतरागता होती है। शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है तथा वीतरागता स्वभाव की दृष्टि से होती है। अंतर में द्रव्यस्वभाव पर लक्ष रहने से वीतरागता हो जाती है, इससे ध्रुव द्रव्यस्वभाव की दृष्टि ही सर्वस्व कार्यकारी हुई। पर्याय को ढूँढ़ना नहीं रहा अर्थात् पर्याय की दृष्टि नहीं रही। ध्रुवस्वभाव की दृष्टि रखकर पर्याय का ज्ञाता रहने से वीतरागता स्वतः होती जाती है।

यद्यपि वीतरागता ही एकमात्र प्रयोजनभूत है किन्तु प्रश्न यह है कि

वह वीतरागता कैसे हो? वीतरागपर्याय को शोधने से वीतरागता नहीं होती किन्तु ध्रुवतत्त्व के आश्रय से पर्याय में वीतरागतारूप प्रयोजन फलित हो जाता है। इसलिये, शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है - ऐसा कहो, या शास्त्र का तात्पर्य स्वभावदृष्टि है - ऐसा कहो, दोनों एक ही है।

जैसा भगवान का आत्मा, वैसा ही अपना आत्मा, उसके स्वभाव में कोई भेद नहीं है। ऐसे स्वभाव का लक्ष्य करना ही शास्त्रों का सार है।

यहाँ परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात चल रही है, उसमें से वीतरागी तात्पर्य किसप्रकार निकलता है, यह बतलाया है। परिणामों में ध्रौव्यता तो अखण्डप्रवाह अपेक्षा से है। अब, परिणामों का प्रवाहक्रम एकसाथ तो वर्तता नहीं है, इसलिये परिणामों की ध्रौव्यता निश्चित करते हुए ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि जाती है। ध्रुवस्वभाव की दृष्टि बिना परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निश्चित नहीं हो सकते। परिणाम को ध्रौव्य कब कहा? - परिणामों के संपूर्ण प्रवाह की अपेक्षा से उसे ध्रौव्य कहा है, सम्पूर्ण प्रवाह एक समय में प्रगट नहीं हो जाता इसलिये परिणाम की ध्रौव्यता निश्चित करने वाले की दृष्टि एक-एक परिणाम के ऊपर से हटकर ध्रुवद्रव्य पर जाती है। परिणाम के ऊपर की दृष्टि से (पर्यायदृष्टि से) परिणाम की ध्रौव्यता निश्चित नहीं होती। परिणामों का अखण्ड प्रवाह कहीं एक ही परिणाम में तो नहीं है, इसलिये अखण्ड की - त्रिकाली द्रव्य की - ध्रुवस्वभाव की दृष्टि हुए बिना परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी ख्याल में नहीं आ सकते।

वस्तु एक समय में पूर्ण है, उसके परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना निश्चित करने से द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है। वर्तमान परिणाम से उत्पाद है, पूर्व परिणाम से व्यय है, और अखण्डप्रवाह की अपेक्षा से ध्रौव्य है। इसलिये अखण्डप्रवाह की दृष्टि में ही ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि गई और तभी परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निश्चित हुए।

प्रश्न :- इसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा?

उत्तर :- ऐसा निश्चित किया वहाँ पुरुषार्थ द्रव्यसन्मुख ही कार्य करने लगा और वीतरागता भी होने लगी। परिणाम अपने स्वकाल में होते हैं, वे तो होते ही रहते हैं, किन्तु ऐसा वस्तुस्वरूप निश्चित करनेवाले की दृष्टि भी ध्रुव पर ही पड़ती है। द्रव्य-दृष्टि हुए बिना यह बात जम ही नहीं सकती।

इस ज्ञेय अधिकार में मात्र परप्रकाशक की बात है। जहाँ अपने ध्रुवभाव की सन्मुखता में स्व-प्रकाशक हुआ वहाँ सम्पूर्ण जगत् के समस्त पदार्थ भी, ऐसे ही हैं ऐसा पर प्रकाशकपना ज्ञान में विकसित हो ही जाता है। द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कब निश्चित होते हैं? ज्ञायक चैतन्यद्रव्य की रुचि तथा उस ओर उन्मुखता होने से सब निश्चित हो जाता है। जिसप्रकार स्व के ज्ञानसहित ही पर का सच्चा ज्ञान होता है, उसीप्रकार ध्रुव की दृष्टि से ही उत्पाद-व्यय का सच्चा ज्ञान होता है।

वस्तुस्वरूप ऐसा है कि कहीं पर के ऊपर तो देखना नहीं है और मात्र अपनी पर्यायसन्मुख भी देखना नहीं है, क्योंकि विकल्प को दूर करके निर्विकल्पता करूँ - ऐसे लक्ष्य से निर्विकल्पता नहीं होती, किन्तु ध्रुव के लक्ष्य से निर्विकल्पता हो जाती है। इसलिये पर्याय के उत्पाद-व्यय के सन्मुख भी देखना नहीं है। पर्यायों के प्रवाहक्रम में द्रव्य वर्त रहा है। किस पर्याय के समय सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है? - जब देखो तब द्रव्य वर्तमान में परिपूर्ण है, ऐसे द्रव्य को सन्मुखता होने से प्रवाहक्रम निश्चित होता है। फिर उस प्रवाह का क्रम बदलने की बुद्धि नहीं रहती, किन्तु ज्ञातापने का ही अभिप्राय रहता है। वहाँ वह प्रवाहक्रम ऐसे का ऐसा रह जाता है और द्रव्यदृष्टि हो जाती है। उस द्रव्यदृष्टि में क्रमशः वीतरागी परिणामों का ही प्रवाह निकलता रहेगा। ऐसा इस ९९वीं गाथा का सार है।

अहो! वस्तु अपार है, उसमें केवलज्ञान का भण्डार भरा है। इसमें से जितना रहस्य निकालो उतना निकल सकता है। भीतर दृष्टि करें तो पार आ सकता है। भले ऐसा कहो कि सामान्य में से विशेष होता है अथवा

वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है अथवा द्रव्य में से क्रमबद्धपर्याय की प्रवाहधारा बहती है, सब कथनी के निष्कर्ष में ध्रुवस्वभाव पर ही दृष्टि जाती है तथा ध्रुवस्वभाव की रुचि में ही सम्यक्त्व और वीतरागता होती है।

यह वस्तु के समय-समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की सूक्ष्म बात है। मिट्टी स्वयं पिण्डदशा का नाश होकर घट पर्यायरूप उत्पन्न होती है और मिट्टीपने के प्रवाह की अपेक्षा वह ध्रौव्य है, उसीप्रकार समस्त पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाववाले हैं - ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव समझ में आने पर आने को पर-सन्मुखपना निरर्थक भासित हो जाता है, क्योंकि पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाववाले हैं - ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ध्रौव्यस्वभाव समझ में आने पर अपने को पर-सन्मुख निरर्थक हो जाता है, क्योंकि पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को स्वयं नहीं करता और अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को स्वयं नहीं करता और अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर से नहीं होते, इसलिये अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के लिये कहीं पर-सन्मुख देखना नहीं रहता, किन्तु स्वसन्मुख देखना ही रहता है। अब स्वयं अपने परिणामों को देखते हुए ज्ञान अन्तर में परिणामी स्वभाव की ओर उन्मुख होता है और उस परिणामी के आधार से वीतरागी परिणाम का प्रवाह निकलता रहता है। इसप्रकार ध्रुव के आश्रय से वीतरागी परिणाम का प्रवाह निकलता रहता है।

“आत्मा दूसरे का कुछ नहीं कर सकता” - ऐसा कहते हैं। अन्य किसी के सन्मुख देखना नहीं रहता, किन्तु स्वसन्मुख देखना आता है। अपने में अपने परिणाम अपने से होते हैं - ऐसा निश्चित करने पर अंतर में जहाँ से परिणाम की धारा बहती है, उस ध्रुव द्रव्य के सन्मुख देखना मात्र रह जाता है और ध्रुव-सन्मुख देखते ही (ध्रुवस्वभाव की दृष्टि होते ही) सम्यक्पर्याय का उत्पाद होता है। यदि ध्रुवसन्मुख न देख तो पर्यायदृष्टि में मिथ्यापर्याय का उत्पाद होता है। इसलिये वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव को समझने से ध्रुवस्वभाव की दृष्टि से सम्यक् वीतराग पर्यायों का उत्पाद हो यही सर्व कथन का तात्पर्य है। ●

प्रवचनसार-गाथा १००

अब उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का परस्पर-अविनाभाव दृढ़ करते हैं :-

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो ।

उत्पादो वि य भंगो ण विणा ध्रौव्येण अत्थेण ॥

ण भवो भङ्गविहीनो भङ्गो वा नास्ति संभवविहीनो ।

उत्पादोऽपि च भंगो न बिना ध्रौव्येणार्थेन ॥

अन्वयार्थ :- (भवः) उत्पाद (भंग विहीनः) भंग रहित (न) नहीं होता (वा) और (भंग) भंग (संभव विहीनः) बिना उत्पाद के (नास्ति) नहीं होता, (उत्पादः) उत्पाद (अपि च) तथा (भंगः) भंग (ध्रौव्येण अर्थेन बिना) ध्रौव्य पदार्थ के बिना (न) नहीं होते ।

टीका :- वास्तव में सर्ग संहार के बिना नहीं होता और संहार सर्ग के बिना नहीं होता, सृष्टि और संहार स्थिति (ध्रौव्य) के बिना नहीं होते, स्थिति सर्ग और संहार के बिना नहीं होती ।

जो सर्ग है वही संहार है, जो संहार है वही सर्ग है, जो सर्ग और संहार है वही स्थिति है, जो स्थिति है वही सर्ग और संहार है । उसका खुलासा इसप्रकार है - जो कुम्भ का सर्ग है वही मृत्तिकापिण्ड का संहार है, क्योंकि भाव का भावान्तर के अभावस्वभाव से अवभासन है । (अर्थात् भाव अन्यभाव के अभावरूप स्वभाव से प्रकाशित है - दिखाई देता है ।) और जो मृत्तिकापिण्ड का संहार है वही कुम्भ का सर्ग है, क्योंकि अभाव का भावान्तर के भावस्वभाव के अवभासन है (अर्थात् नाश अन्यभाव के उत्पादरूप स्वभाव के प्रकाशित है ।) और जो कुम्भ का सर्ग और जो कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है वही मृत्तिका की स्थिति है, क्योंकि व्यतिरेक, अन्वय का अतिक्रमण (उल्लंघन) नहीं करने और जो मृत्तिका

की स्थिति है वही कुम्भ का सर्ग और जो मृत्तिका की स्थिति है वही कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है, क्योंकि व्यतिरेकों के द्वारा ही अन्य प्रकाशित होता है । और यदि ऐसा न माना जाय तो ऐसा सिद्ध होगा कि “सर्ग अन्य है, संहार अन्य है, स्थिति अन्य है ।” (अर्थात् तीन पृथक् है ऐसा मानने का प्रसंग आ जायेगा ।) ऐसा होने पर (क्या दोष आता है, सो समझाते हैं) :-

केवल सर्ग-शोधक कुम्भ की (व्यय और ध्रौव्य से भिन्न मात्र उत्पाद करने वाले कुम्भ की) उत्पादन कारण का अभाव होने से उत्पत्ति ही नहीं होगी अथवा असत् का ही उत्पाद होगा । और (१) यदि कुम्भ की उत्पत्ति न होगी तो समस्त ही भावों की उत्पत्ति नहीं होगी । (अर्थात् जैसे कुम्भ की उत्पत्ति नहीं होगी उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भी भाव का उत्पाद ही नहीं होगा - यह दोष उत्पन्न होगा (अर्थात् जैसे कुम्भ की उत्पत्ति नहीं होगी उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भी भाव का उत्पाद ही नहीं होगा - यह दोष आयेगा । अथवा (२) यदि असत् का उत्पाद हो तो व्योम-पुष्प इत्यादि का भी उत्पाद होगा (अर्थात् शून्य में से भी पदार्थ उत्पन्न होने लगेंगे - यह दोष आयेगा) और केवल व्ययारम्भक (उत्पाद और ध्रौव्य से रहित केवल व्यय करने की उद्यत मृत्तिकापिण्ड का) संहारकारण का अभाव होने से संहार ही नहीं होगा, अथवा तो सत् का ही उच्छेद होगा । वहाँ, (१) यदि मृत्तिकापिण्ड का व्यय न होगा तो समस्त ही भावों का संहार ही न होगा, (अर्थात् जैसे मृत्तिकापिण्ड का संहार नहीं होगा उसीप्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भाव का संहार नहीं होगा, यह दोष आयेगा) अथवा (२) यदि सत् का उच्छेद होगा तो चैतन्य इत्यादि का भी उच्छेद हो जायेगा, (अर्थात् समस्त द्रव्यों का सम्पूर्ण विनाश हो जायेगा - यह दोष आयेगा) और केवल स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली मृत्तिका की, व्यतिरेकों सहित स्थिति का - अन्वय का - उसके अभाव होने से, स्थिति ही नहीं

होगी, अथवा तो क्षणिक को ही नित्यत्व आ जायेगा। वहाँ (१) यदि मृत्तिका की स्थिति न हो तो समस्त ही भावों की स्थिति नहीं होगी (अर्थात् यदि मिट्टी ध्रुव न रहे तो मिट्टी की ही भाँति विश्व का कोई भी द्रव्य ध्रुव ही नहीं रहेगा, टिकेगा ही नहीं - यह दोष आयेगा।) अथवा (२) यदि क्षणिक का नित्यत्व हो तो चित्त के क्षणिक-भावों का भी नित्यत्व होगा, (अर्थात् मन का प्रत्येक विकल्प भी त्रैकालिक ध्रुव हो जाय - यह दोष आयेगा।) इसलिये द्रव्य को उत्तर-उत्तर व्यतिरेकों के सर्ग (उत्पाद) के साथ, पूर्व पूर्व के व्यतिरेकों के संहार के साथ और अन्वय के अवस्थान (ध्रौव्य) के साथ त्रिलक्षणतारूप लांछन प्रकाशमान है - ऐसा समझना।

गाथा १०० पर प्रवचन

वस्तु में उत्पाद-व्यय और ध्रुव - ये तीनों एक साथ ही होते हैं, यदि ऐसा न माना जाये और उत्पाद-व्यय-ध्रुव इन तीनों को एक-दूसरे के बिना भिन्न-भिन्न ही माना जाये तो उसमें जो दोष आते हैं, वे इसप्रकार हैं -

यदि व्यय और ध्रुव के बिना मात्र उत्पाद ही माना जाये तो, एक तो उत्पादन कारण के बिना उत्पाद ही सिद्ध नहीं होगा, अथवा असत् का ही उत्पाद होगा। मिथ्यात्व का व्यय सम्यक्त्व के उत्पाद का कारण है और आत्मा की ध्रुवता के आधार से सम्यक्त्व का उत्पाद होता है। आत्मा को ध्रुवता के आधार बिना और मिथ्यात्व के व्यय बिना मात्र सम्यक्त्व के उत्पाद को ही ढूँढ़ें तो वह नहीं मिलेगा। ध्रुव के आधार के बिना उत्पाद किसमें होगा? और मिथ्यात्व पर्याय का अभाव हुए बिना सम्यक्त्व पर्याय का उत्पाद कहाँ से होगा? नवीन पर्याय उत्पन्न होने का कारण पुरानी पर्याय का व्यय है, और नवीन पर्याय उत्पन्न होने का आधार “ध्रुव” है। ध्रुव के आधार के बिना ही यदि उत्पाद हो तब तो असत् का उत्पाद हो। यदि मिथ्यात्व का व्यय न हो तो सम्यक्त्व का उत्पाद ही न हो। तथा आत्मा की ध्रुवता बिना ही यदि कोई सम्यक्त्व का

उत्पाद माने तो उसे असत् की उत्पत्ति होने का प्रसंग आयेगा।

जिसप्रकार मिट्टी के पिण्ड के अभाव बिना और मिट्टी की ध्रुवता के बिना घड़े का उत्पाद नहीं हो सकता, उसीप्रकार आत्मा में वस्तु की ध्रुवता और अधर्म के नाश के बिना धर्म का उत्पाद नहीं हो सकता। ध्रुव त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। यदि ध्रुव के आधार बिना ही उत्पत्ति हो तो असत् की उत्पत्ति होगी।

देखो, सुख चाहिए है न? तो वह सुख कहाँ ढूँढ़ना? सुख का आधार ध्रुव आत्मा है, और सुख का कारण दुःख का नाश है - उसमें सुख ढूँढ़ें तो सुख मिलेगा। घर या शरीर-स्त्री-सम्पत्ति के आधार से सुख नहीं मिलेगा, किन्तु आत्मा के ध्रुवता के आधार से और आकुलता के अभाव में सुख की प्राप्ति होगी। ध्रुवता सुख के उत्पाद का आधार है और आकुलता का व्यय सुख की उत्पत्ति का कारण है। इन दोनों को न माने तो सुख की उत्पत्ति न हो। पर के आश्रय के व्यय से और अपनी ध्रुवता के आश्रय से सुख का उत्पाद होता है। इसलिए सुख के लिये ध्रुव की ही रुचि करना आवश्यक है।

यहाँ जो कई उदाहरण दिये गये, तदनुसार समस्त द्रव्यों में प्रतिसमय जो उत्पाद होता है वह ध्रुव और व्यय के बिना नहीं होता - ऐसा समझना। भाई! यदि तुझे शांति प्रगट करना हो तो तू अपने ध्रुव तत्त्व में ढूँढ़। ध्रुवतत्त्व के आधार से ही शान्ति की उत्पत्ति होगी। अशान्ति का अभाव शान्ति की उत्पत्ति का कारण कहा है, किन्तु उस अशान्ति का अभाव और शान्ति की उत्पत्ति ध्रुवतत्त्व की दृष्टि करने से होती है। इसप्रकार शान्ति के लिए भी ध्रुवस्वभाव की दृष्टि करना आवश्यक है।

आत्मा और जड़ प्रत्येक पदार्थ में प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रुव हो रहे हैं। यदि वे उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वतंत्र न हों और दूसरे के कारण से हों तो वह पदार्थ ही स्वयंसिद्ध न रहे। प्रत्येक पदार्थ के उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने ही आधीन हैं, एक समय में ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव - तीनों का होना

वस्तु का स्वभाव है। ९९वीं गाथा में 'द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है' यह सिद्ध किया गया था और इस १००वीं गाथा में अधिक स्पष्टता करके द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को एकमात्र बतलाते हैं। यदि उत्पाद व्यय ध्रुव को एकसाथ ही या एक ही न मानें तो वस्तु ही सिद्ध नहीं होती।

प्रश्न :- कोई मात्र उत्पाद को ही माने, और उसके साथ ही व्यय तथा ध्रुव को न माने तो क्या होगा?

उत्तर :- पिण्ड का अभाव घड़े का उत्पादन कारण है, उस उत्पादनकारण बिना घड़े को उत्पत्ति ही नहीं होगी। अथवा तो ध्रुव मिट्टी के बिना ही घड़ा उत्पन्न होने लगेगा। आत्मा में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति चेतना की नित्यता के आधार बिना और मिथ्यात्व के व्यय बिना नहीं हो सकती। परपदार्थ की रुचिरूप पूर्व की मिथ्याभ्रान्ति का नाश हुए बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति को ढूँढ़ें तो वह नहीं मिलेगी और ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना भी सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होगा।

सम्यक्त्व की उत्पत्ति के साथ ही आत्मा की ध्रुवता और मिथ्यात्व का व्यय होता है। इन दोनों को माने बिना सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता। मिट्टी मिट्टीपने की ध्रुवता और पिण्ड अवस्था के व्यय बिना घड़े की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होता। और यदि जगत् में घड़े रूप में भाव की उत्पत्ति न हो तो जगत् में सम्यक्त्व, सिद्धदशा आदि किन्हीं भावों की उत्पत्ति ही न हो। और यदि मिट्टी के बिना ही घड़ा हो तो आकाश-कुसुम भी हो, अर्थात् वस्तु के अस्तित्व बिना अधर से ही नवीन-नवीन भाव उत्पन्न होने लगे, आत्मा के बिना ही सम्यक्त्व उत्पन्न हो - इसप्रकार महान दोष आता है। आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन बिना कभी सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। पर से लाभ होगा - ऐसी जो मिथ्यारुचि है, उस परसन्मुख रुचि के अभाव के बिना और स्वद्रव्य की ध्रुवता के अवलम्बन बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

इसीप्रकार सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी ऐसा समझना कि ध्रुव ज्ञानानन्द आत्मा के अवलम्बन से और अज्ञान के व्यय से सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ध्रुव चैतन्य बिना और अज्ञान के व्यय के बिना सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति ढूँढ़ें तो वह नहीं मिलेगी तथा इसीप्रकार चारित्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में समझना कि बाह्य क्रिया में या शरीर की नग्न अवस्था में आत्मा का चारित्र नहीं है। चारित्र अर्थात् आत्मा की वीतराग पर्याय राग के अभाव से और ध्रुव चिदानन्द आत्मा के अवलम्बन से उत्पन्न होती है, महाव्रतादि के राग से उत्पन्न नहीं होती। ध्रुवता का अवलम्बन और राग का अभाव - इन दोनों के बिना वीतराग भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

इसीप्रकार केवलज्ञान की उत्पत्ति ध्रुव चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन बिना और पूर्व की अपूर्ण ज्ञानदशा के व्यय बिना नहीं होती। आत्मा की ध्रुवता रहकर और अल्पज्ञता का व्यय होकर पूर्णज्ञान की उत्पत्ति होती है।

अन्तिम सिद्धदशा भी आत्मा की ध्रुवता और संसारदशा का व्यय सहित ही होती है।

इसमें ध्रुवता सद्भावसाधन है और व्यय अभावसाधन है।

उपर्युक्त दृष्टान्तों के अनुसार जगत् के जड़ या चेतन समस्त भावों के उत्पाद में समझना। किसी भी भाव का उत्पाद वस्तु को ध्रुवता के बिना और पूर्व भावों के व्यय बिना नहीं होता।

यदि मिट्टी के बिना ही घड़ा उत्पन्न होने लगे तब तो आकाशकुसुम की भाँति वस्तु के बिना ही जगत् में अवस्थाएँ होने लगेंगी। जिसप्रकार आकाश के फूल नहीं हैं, उसीप्रकार ध्रुवस्वभाव के बिना पर्याय का उत्पाद नहीं होता। ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना सम्यक्त्वपर्याय का उत्पाद नहीं हो सकता। जगत् में यदि खरगोश के सींग हों, कछुए के बाल हों या आकाश के फूल हों तो ध्रुव के अवलम्बन बिना सम्यक्त्व हो।

ध्रुवतत्त्व के बिना मात्र शून्य में से ही किसी भाव की उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए उत्पाद के साथ ध्रुव और व्यय को भी मानना चाहिए। ऐसा ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप वस्तुस्वरूप है, सर्वज्ञदेव के ज्ञान में इसीप्रकार ज्ञात हुआ है, उनकी वाणी में इसीप्रकार आया है, सन्तों ने भी इसीप्रकार जानकर कहा है और शास्त्रों में भी यही कथन है। ऐसे वस्तुस्वरूप को जो नहीं जानता वह वास्तव में देव-गुरु-शास्त्र को नहीं जानता।

देखो भाई! सत् सरल है, सहज है, सुगम है, किन्तु अज्ञानता से विषम मान लिया है, इसलिये कठिन लगता है। सत्समागम से शान्त होकर समझे तो सत् सरल है, सहज है। यह वस्तुस्वभाव समझे बिना किसी प्रकार कल्याण नहीं होता।

वस्तु एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप है। विकार की रुचि के अभाव बिना और नित्य आत्मा के अवलंबन के बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। वस्तु में यदि ध्रुव और व्यय न हो तो उत्पाद नहीं होता। इसप्रकार एक मात्र उत्पाद मानने में उत्पाद के भी अभाव का प्रसंग आता है यह बतलाया। अब व्यय की बात करते हैं।

ध्रुव और उत्पाद के बिना मात्र व्यय मानने में भी यही दोष आता है। ध्रुव और उत्पाद के बिना मात्र व्यय भी नहीं हो सकता।

कोई कहे कि मिट्टी में पिण्डपर्याय का नाश हुआ, किन्तु घटपर्याय की उत्पत्ति नहीं हुई और मिट्टी स्थायी नहीं रही - तो ऐसा नहीं हो सकता। इसीप्रकार कोई कहे कि हमारे परपदार्थों की रुचि का नाश तो हो गया है, किन्तु स्वपदार्थ की रुचि उत्पन्न नहीं हुई और आत्मा का ध्रुवपना भासित नहीं हुआ तो उसकी बात भी मिथ्या है। जिस क्षण पर में सुखबुद्धि का नाश हुआ उसी क्षण आत्मा की रुचि न हो और उसकी ध्रुवता का आधार भासित न हो - ऐसा नहीं हो सकता। सम्यक्त्व का उत्पाद और आत्मा की ध्रुवता के बिना मिथ्यात्व का व्यय नहीं होता।

पिण्डदशा के नाश का कारण घड़े की उत्पत्ति है, और घड़े में मिट्टीपना

स्थायी रहकर पिण्ड का व्यय होता है, पिण्ड का व्यय होने पर भी मिट्टी ध्रुव रहती है। यदि वस्तु में नवीन भावों की उत्पत्ति और वस्तु की ध्रुवता न माने तो जगत् में कारण के अभाव में किन्हीं भावों का नाश ही नहीं होगा, अथवा तो सत् का ही सर्वथा नाश हो जायेगा। स्व की रुचि के उत्पाद बिना और ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना ही यदि कोई मिथ्यारुचि का व्यय करना चाहे तो प्रथम तो व्यय हो ही नहीं सकता। यदि होना माने भी तो मिथ्यारुचि के नाश के साथ आत्मा का ही नाश हो जायेगा। इसलिए ध्रुव और उत्पाद - इन दो भावों के बिना मात्र व्यय नहीं होता। ऐसा सभी भावों में समझना।

सर्वज्ञदेव का देखा हुआ और कहा हुआ वस्तु का स्वरूप त्रिकाल सनातन यथावत वर्त रहा है, उसमें कोई अन्यथा कल्पना करे तो उसको कल्पना से वस्तुस्वरूप में तो कुछ फेरफार हो नहीं सकता, उसकी मान्यता में ही मिथ्यात्व होगा।

कोई कहे कि “अपने को तो दूसरा कुछ समझने का काम नहीं है, बस, एक मात्र राग-द्वेष को दूर करना है। उससे पूछना चाहिए कि ऐसा कहनेवाला किस भाव में स्थिर रहकर राग-द्वेष को दूर करेगा? वीतराग भाव की उत्पत्ति और आत्मा की ध्रुवता को माने बिना अपने अस्तित्व को ही नहीं माना जा सकता और राग-द्वेष भी दूर नहीं हो सकते। वीतराग भाव की उत्पत्ति और आत्मा की ध्रुवता को माने बिना अपने अस्तित्व को ही नहीं माना जा सकता और रागद्वेष भी दूर नहीं हो सकते। यदि ध्रुवपना न माने तो चेतन की ध्रुवता के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश होने से आत्मा का अस्तित्व ही नहीं रहेगा और यदि वीतरागता का उत्पाद न माने तो राग-द्वेष का नाश ही नहीं होता। राग का व्यय वीतरागता की उत्पत्ति है और उसमें चैतन्यपने की ध्रुवता है। ध्रुव के लक्ष्य से, वीतरागता की उत्पत्ति होने से, राग का व्यय होता है। इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीनों एक साथ हैं। वीतरागता के उत्पाद बिना राग का

व्यय नहीं हो सकता और चेतन की ध्रुवता के बिना ही राग-द्वेष का नाश हो तो उस राग के साथ सत् आत्मा का भी नाश हो जायेगा। ध्रुव के बिना व्यय मानने से जगत के समस्त भावों के नाश का प्रसंग प्राप्त होगा। इसीलिए वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ ही हैं - ऐसा वस्तुस्वरूप समझना चाहिए।

घड़े की उत्पत्ति में पिण्ड के व्ययरूप कारण न मानने से मिट्टी में से पिण्ड का व्यय नहीं होगा। और यदि पिण्ड का व्यय नहीं होगा तो उसकी भाँति ही जगत में अज्ञान, मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि किसी भी भाव का व्यय नहीं होगा और मुक्ति की प्राप्ति भी नहीं होगी और ध्रुवता के बिना राग-द्वेष का नाश होना माने तो उसकी श्रद्धा में आत्मा का नाश हो जाता है। यद्यपि वस्तुतः आत्मा का नाश नहीं होता, किन्तु आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश करना जो मानता है उसकी मान्यता में आत्मा का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता अर्थात् आत्मा का अभाव हो जाता है।

कर्म पुद्गल की पर्याय है। उस पर्याय का नाश उसकी दूसरी पर्याय के उत्पाद बिना नहीं होता। कर्म का नाश आत्मा नहीं करता है। 'कर्म आत्मा को बाधक होते हैं, इसलिए उनका नाश करो' - ऐसा माननेवाले की समझ में भूल है। जो ध्रुव-स्वभाव के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश करना माने वह भी भूल में है। जड़कर्मों का नाश पुद्गल की ध्रुवता का और उसकी नवीन पर्याय के उत्पाद का अवलम्बन लेता है। आत्मा के वीतराग भाव से पुद्गल में कर्मदशा का व्यय हुआ या वीतराग भाव की उत्पत्ति होने से राग का व्यय होता है। वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव का उस वस्तु के साथ ही संबंध है, किन्तु एक वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव का दूसरी वस्तु के साथ कोई संबंध नहीं है।

यह तो सनातन सत्य वस्तुस्वरूप का महान नियम है। ईश्वर ने जीव को बनाया है, - "इसप्रकार ईश्वर को कर्ता माने अथवा जैसा निमित्त

आये वैसी पर्याय होती है - इसप्रकार दूसरी वस्तु को पर्याय की उत्पत्ति का कारण माने तो वे दोनों मान्यताएँ मिथ्या ही हैं, उनमें वस्तु की स्वतंत्रता नहीं रहती। प्रत्येक वस्तु में प्रतिसमय स्वतंत्र अपने से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव होता है, ऐसी ही वस्तुस्थिति है, कोई ईश्वर या कोई निमित्त उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव में कुछ नहीं करते। कोई ऐसा कहे कि सम्पूर्ण वस्तु को दूसरे ने बनाया है और दूसरा ऐसा कहे कि वस्तु की अवस्था को दूसरे ने बनाया है, तो उन दोनों की मिथ्या मान्यता में परमार्थतः कोई अंतर नहीं है।

जिसने एकसमय में वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव को नहीं जाना। उसकी मान्यता में अवश्य कुछ न कुछ दोष आता है। यदि वस्तु में एक भाव का व्यय होने से उसीसमय नवीन भाव की उत्पत्ति न हो और वस्तु की ध्रुवता न रहे तो व्यय होने से सत् का ही नाश हो जायेगा, इसलिए जगत के समस्त पदार्थों का नाश हो जाता है। चैतन्य की ध्रुवता रहकर और सम्यक्त्व भाव की उत्पत्ति होकर ही मिथ्यात्वभाव का व्यय होता है।

प्रत्येक समय का सत् उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है। उन उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों को एकसाथ न मानें तो उसकी सिद्धि ही नहीं होती। पर के कारण उत्पाद-व्यय-ध्रुव माने वह तो मिथ्या ही है, और अपने में भी उत्पाद, व्यय या ध्रुव को एक-दूसरे के बिना माने तो वह भी वस्तु को नहीं जानता है। देव-गुरु के कारण अपने में सम्यक्त्व का उत्पाद होना माने तो उसे सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता और अपने में मिथ्यात्व का व्यय तथा आत्मा की ध्रुवता - इन दोनों के बिना सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता। इसीप्रकार मिथ्यात्व का व्यय भी सम्यक्त्व के उत्पाद और चैतन्य की ध्रुवता के बिना सिद्ध नहीं होता।

पैसे खर्च करने से आत्मा को धर्म हो - यह बात भी मिथ्या है, क्योंकि पैसे की एक पर्याय का व्यय उसकी दूसरी पर्याय के उत्पाद का कारण है, किन्तु आत्मा की धर्मपर्याय के उत्पाद का कारण वह नहीं है।

पूर्वपर्याय का विनाश और उत्तरपर्याय की उत्पत्ति को आपस में एक-दूसरे का कारण कहा है। आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन से मिथ्यात्व का नाश सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण है और सम्यक्त्व का उत्पाद हुए बिना तथा आत्मा की ध्रुवता रहे बिना ही यदि मिथ्यात्व का नाश हो जाये तो मिथ्यात्व का नाश होने से आत्मा का अस्तित्व ही कुछ नहीं रहा - इसलिये मात्र व्यय की मान्यता में आत्मा का ही नाश होने का प्रसंग प्राप्त होता है और इसीप्रकार जगत के समस्त सत् पदार्थों का भी उसकी मान्यता में नाश हो जाता है, अर्थात् उत्पाद और ध्रुवता के बिना मात्र व्यय को ही मानने वाला नास्तिक जैसा हो जाता है।

अहो! ध्रुवस्वभाव की सन्मुखता से होनेवाली वीतरागता की उत्पत्ति के बिना यदि राग-द्वेष के नाश को प्रारम्भ करने जाये तो उसके कभी राग-द्वेष का नाश नहीं होता। आत्मा की ध्रुवता को लक्ष्य में लिये बिना राग को घटाने से आत्मा का अभाव होने का ही प्रसंग आता है। अरे भाई! राग को कम करने से लक्ष्य से राग कम नहीं होता, किन्तु जब ध्रुवता का अवलम्बन ले और वीतरागभाव की उत्पत्ति हो तब राग का व्यय होता है।

जगत् के चेतन और जड़ सभी पदार्थों में प्रतिसमय उनके स्वभाव से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। यदि कोई मात्र उत्पाद को ही माने तो वह पदार्थों की ही नवीन उत्पत्ति मानता है और यदि कोई व्यय को ही माने तो वह भी पदार्थों का ही नाश मानता है - ऐसा मानने वाला जीव सर्वज्ञ को, गुरु को, शास्त्र को या ज्ञेयों के स्वभाव को नहीं मानता और अपने ज्ञानस्वभाव से आत्मा को भी वह नहीं मानता। देव-गुरु-शास्त्र भी ऐसी ही वस्तुस्थिति कहते हैं। ज्ञेय का स्वभाव भी ऐसा ही है आत्मा का स्वभाव उन्हें जानने का है - ऐसी जो वस्तुस्थिति है, वह समझने योग्य है। यह समझे तभी ज्ञान में शान्ति और वीतरागता हो सकती है। यथार्थ वस्तुस्थिति को समझे बिना ज्ञान में कभी शांति या वीतरागता नहीं होती।

(१) उत्पाद, व्यय और ध्रुव के बिना नहीं होता।

(२) व्यय, उत्पाद और ध्रुव के बिना नहीं होता।

ये दो बातें सिद्ध कीं। उत्पाद और व्यय - दोनों ध्रुव के बिना ये नहीं होते - इस बात का भी उन दो बोलों में समावेश हो गया। अब तीसरी बात सिद्ध करते हैं : - (३) ध्रुव, उत्पाद और व्यय के बिना नहीं होता।

उत्पाद-व्यय के बिना मात्र ध्रुव को मानने से जो दोष आता है, वह कहते हैं :- यदि मात्र ध्रुव को ही माना जाये तो वह ध्रुवतत्त्व उत्पाद-व्यय का उल्लंघन कर गया। पिण्ड के नाश बिना और घड़े की उत्पत्ति बिना मिट्टी की ध्रुवता किसमें रहेगी? परिणाम के बिना परिणामी सिद्ध ही नहीं हो सकता। उत्पाद-व्यय के बिना ध्रुव को निश्चित कौन करेगा? ध्रुव स्वयं ध्रुव को निश्चित नहीं करता, किन्तु नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्याय के व्यय द्वारा ध्रुव निश्चित होता है।

‘आत्मा मात्र कूटस्थ ध्रुव है’ ऐसा कोई कहे, तो उसने भी पहले आत्मा को कूटस्थ नहीं माना था, किन्तु परिणामी माना था, उस मान्यता का नाश हुआ और ‘आत्मा कूटस्थ है’ - ऐसी मान्यता का उत्पाद हुआ। इसप्रकार कूटस्थ माननेवाले अपने में ही उत्पाद-व्यय आ गये। ऐसे उत्पाद-व्यय के बिना कूटस्थ मानने वाला भी सिद्ध नहीं होगा।

कोई कहे कि हमें तो मात्र ध्रुव ही रखना है, उत्पाद-व्यय नहीं चाहिए; तो मात्र उस ध्रुव को ही प्राप्त करनेवाले को उत्पाद-व्यय से रहित ध्रुवता ही नहीं रहेगी, अथवा क्षणिक उत्पाद-व्यय स्वयं ही ध्रुव हो जायेंगे। यदि एक वस्तु ध्रुव न रहे तो जगत की कोई वस्तु ध्रुव नहीं रहेगी अथवा राग-द्वेष आदि जो क्षणिक विकल्प हैं, वे भी ध्रुव ही हो जायेंगे, इसलिए प्रतिक्षण होनेवाले विकल्प ही द्रव्य हो जायेंगे - यह दोष आता है।

वस्तु एकान्त नित्य नहीं है, किन्तु अनेकान्तस्वरूप है। वस्तु नित्य-अनित्यरूप, एक-अनेकरूप - ऐसे अनेकान्तस्वरूप है। वस्तु में यदि नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्याय का व्यय न हो तो उसकी अनित्यता, अनेकता ही सिद्ध नहीं होगी अथवा क्षणिक उत्पाद-व्यय

स्वयं ही ध्रुव हो जायेगा इसलिये प्रतिसमय का द्रव्य भिन्न-भिन्न ही सिद्ध होगा और वस्तु को सर्वथा अनेकता ही हो जायेगी - ऐसा होने से वस्तु की अखण्ड एकता - नित्यता सिद्ध नहीं होगी। इसलिये अनेकान्तमय वस्तु में नवीन भाव की उत्पत्ति सहित और पुराने भाव के नाश सहित ही ध्रुवता है - ऐसा मानना।

अगली पर्याय का उत्पाद, पीछे की पर्याय का व्यय और अखण्ड सम्बन्ध की अपेक्षा से ध्रुवता - इन तीनों के साथ द्रव्य अविनाभावी है, ऐसा द्रव्य अबाधित रूप से उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप (त्रिलक्षणरूप) चिह्न वाला है।

यहाँ उत्पाद में नवीन भाव की उत्पत्ति सिद्ध करना है, इसलिये उसमें 'सर्ग को शोधनेवाला' - ऐसी भाषा का उपयोग किया है। व्यय में वर्तमान भाव का नाश है, इसलिये उसमें 'संहार को आरम्भ करनेवाला' ऐसी भाषा का उपयोग किया है। और - ध्रुव में जो है उसकी स्थिति की बात है इसलिये "स्थिति प्राप्त करने के लिए जानेवाला - ऐसी भाषा का उपयोग किया है। - इसप्रकार तीनों बोलों की शैली से अन्तर डाला है।

प्रत्येक पदार्थ में प्रतिसमय में उत्पाद-व्यय और ध्रुव हैं। यदि उन तीनों को एकसाथ न माना जाय तो उसमें दोष आता है। वह दोष बतलाकर उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अविनाभावीपना इस गाथा में दृढ़ किया है।

यदि मात्र उत्पाद ही माना जाये तो पुरानी पर्याय के व्यय बिना नवीन पर्याय की उत्पत्ति नहीं होगी अथवा ध्रुव के आधार बिना असत् की उत्पत्ति होगी, इसलिये एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों साथ हों तभी उत्पाद होगा।

यदि मात्र व्यय ही माना जाये तो नवीन पर्याय के उत्पाद बिना पुरानी पर्याय का व्यय ही नहीं होगा अथवा - ध्रुवपना रहे बिना ही व्यय होगा तो सत् का ही नाश हो जायेगा इसलिये एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों साथ ही हों तभी व्यय सिद्ध होगा।

उत्पाद-व्यय के बिना मात्र ध्रुव को ही मानें तो उत्पाद-व्ययरूप व्यतिरेक के बिना ध्रुवपना ही नहीं रहेगा। अथवा एक अंश है वही सम्पूर्ण द्रव्य हो जायेगा। इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक समय में साथ ही हों तभी ध्रुवपना रह सकेगा।

मिट्टी में घड़ा आदि किसी भी एक पर्याय के उत्पाद बिना और पिण्ड आदि किसी एक पूर्वपर्याय के व्यय बिना मिट्टी की ध्रुवता ही नहीं रहेगी। और यदि मिट्टी की ध्रुवता न रहे तो मिट्टी की भाँति जगत् के किन्हीं भी भावों की ध्रुवता नहीं रहेगी, सर्वनाश हो जायेगा।

अथवा जो क्षणिक है वही ध्रुव हो जाये तो मन के विकल्प-राग-द्वेष-अज्ञान-कर्म - ये सब ध्रुव हो जायेंगे। यदि उत्पाद-व्यय न हो तो अज्ञान का नाश करके सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, संसार का व्यय होकर सिद्धदशा की उत्पत्ति, क्रोधभाव दूर होकर क्षमाभाव की उत्पत्ति - ऐसा कुछ भी नहीं रहेगा।

इसलिये द्रव्य को उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला एक साथ ही मानना युक्तियुक्त है सारांश यह है कि - पूर्व पूर्व परिणामों के व्यय के साथ, पीछे-पीछे के परिणामों के उत्पाद के साथ और अन्वय अपेक्षा से ध्रुव के साथ द्रव्य को अविनाभाववाला मानना। उत्पाद व्यय और ध्रुव यह तीनों एक साथ निर्विघ्नरूप से द्रव्य में हैं - ऐसा सम्मत करना, निःसन्देहरूप से निश्चित करना। मात्र उत्पाद, मात्र व्यय का मात्र ध्रुवता द्रव्य का लक्षण नहीं है, किन्तु उत्पाद-व्यय और ध्रुव - ये तीनों एक साथ ही द्रव्य का लक्षण है - ऐसा जानना।

इसप्रकार ज्ञेय अधिकार को इस १००वीं गाथा में उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अविनाभाव दृढ़ किया। आगे १०१वीं गाथा में उत्पादादि का द्रव्य से अर्थान्तरपने का निषेध करेंगे अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य से पृथक् पदार्थ नहीं हैं, किन्तु सब एक द्रव्य ही हैं - ऐसा सिद्ध करेंगे। ●

प्रवचनसार-गाथा १०१

उत्पाददृदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाण ।
दव्वे हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं ॥
उत्पादस्थितिभङ्गा विद्यन्ते पर्यायेषु पर्यायाः ।
द्रव्ये हि सन्ति नियतं तस्माद् द्रव्यं भवति सर्वम् ॥

अन्वयार्थ :- (उत्पादस्थितिभंगाः) उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय (पर्यायेषु) पर्यायों में (विद्यन्ते) वर्तते हैं; (पर्यायः) पर्यायें (नियतं) नियम से (द्रव्ये हि सन्ति) द्रव्य में होती हैं, (तस्मात्) इसलिये (सर्वं) वे सब (द्रव्यं भवति) द्रव्य हैं ।

टीका :- उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में पर्यायों का अवलम्बन करते हैं, और वे पर्यायें द्रव्य का आलम्बन करती हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों के आश्रय से हैं और पर्यायें द्रव्य के आश्रय से हैं, इसलिये यह सब एक ही द्रव्य हैं, द्रव्यान्तर नहीं ।

प्रथम तो द्रव्य पर्यायों के द्वारा अवलम्बित है (अर्थात् पर्यायें द्रव्याश्रित हैं) क्योंकि समुदायों समुदायस्वरूप होता है, वृक्ष की भाँति । जैसे समुदायी वृक्ष स्कंध, मूल और शाखाओं का समुदायस्वरूप होने से स्कंध, मूल और शाखाओं से आलम्बित होकर दिखाई देता है; इसी प्रकार समुदायी द्रव्य पर्यायों का समुदायस्वरूप होने से पर्यायों के द्वारा आलम्बित होकर भासित होता है । जैसे स्कंध, मूल, शाखायें वृक्षाश्रित ही हैं, वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं; उसीप्रकार पर्यायें द्रव्याश्रित ही हैं, द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं ।

और पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा आलम्बित हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायाश्रित हैं; क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं, अंशी के नहीं; बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भाँति । जैसे अंशी वृक्ष के

बीज, अंकुर-वृक्षत्वस्वरूप तीन अंश, व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निज धर्मों से आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं; उसी प्रकार अंशी द्रव्य के नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और अवस्थित रहने वाला भाव - ये तीनों अंश व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निजधर्मों के द्वारा आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं, किन्तु यदि (१) भंग (२) उत्पाद और (३) ध्रौव्य को अंशी का न मानकर द्रव्य का ही माना जाये तो सारा विप्लव को प्राप्त होगा । यथा - (१) पहले यदि द्रव्य का ही भंग माना जाये तो क्षणभंग से लक्षित समस्त द्रव्यों का एक क्षण में ही संहार हो जाने से द्रव्यशून्यता आ जाएगी अथवा सत् का उच्छेद हो जायेगा (२) यदि द्रव्य का ही उत्पाद माना जाये तो समय-समय पर होनेवाले उत्पाद के द्वारा चिह्नित, ऐसे द्रव्यों को प्रत्येक को अनन्तता आ जायेगी । अर्थात् समय-समय पर होनेवाला उत्पाद जिसका चिह्न हो ऐसा प्रत्येक द्रव्य अनन्तद्रव्यत्व को प्राप्त हो जायेगा अथवा असत् का उत्पाद हो जायेगा (३) यदि द्रव्य का ही ध्रौव्य माना जाये तो क्रमशः होनेवाले भावों के अभाव के कारण द्रव्य का अभाव हो आयेगा अथवा क्षणिकपना होगा ।

इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा पर्यायें आलम्बित हों और पर्यायों के द्वारा द्रव्य आलम्बित हों कि जिससे यह सब एक ही द्रव्य हैं ।

भावार्थ :- बीज, अंकुर और वृक्षत्व, यह वृक्ष के अंश हैं । बीज का नाश, अंकुर का उत्पाद और वृक्षत्व का ध्रौव्य-तीनों एक साथ ही होते हैं । इसप्रकार नाश बीज के आश्रित हैं, उत्पाद अंकुर के आश्रित है, और ध्रौव्य वृक्षत्व के आश्रित है, नाश, उत्पाद और ध्रौव्य, बीज, अंकुर और वृक्षत्व; वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं । इसलिये ये सब एक वृक्ष ही हैं । इसीप्रकार नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और ध्रौव्य भाव; सब द्रव्य के अंश हैं । नष्ट होते हुए भाव का नाश, उत्पन्न होते हुए भाव का उत्पाद और स्थायी भाव का ध्रौव्य एक ही साथ हैं । इसप्रकार

नाश नष्ट होते भाव के आश्रित हैं, उत्पाद उत्पन्न होते भाव के आश्रित हैं। नाश, उत्पाद और ध्रौव्य उन भावों से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं और वे भाव भी द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। इसलिए सब, एक ही द्रव्य हैं।

गाथा १०१ पर प्रवचन

उत्पाद, स्थिति और भंग पर्यायों में वर्तते हैं, पर्यायों नियम से द्रव्य में होती हैं; इसलिये सब द्रव्य हैं।

“उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में पर्यायों का आलम्बन होते हैं और वे पर्यायों द्रव्य का अवलम्बन लेती हैं; इसलिये सब एक ही द्रव्य हैं, द्रव्यांतर नहीं हैं।” अब उसका विस्तार से स्पष्टीकरण करते हैं :-

“प्रथम तो द्रव्य पर्यायों द्वारा आलम्बित होता है; क्योंकि समुदायी समुदायस्वरूप होता है।”

द्रव्य का ही व्यय, द्रव्य का ही उत्पाद और द्रव्य की ही ध्रुवता होती हो - ऐसा नहीं है, क्योंकि उस एक-एक में सम्पूर्ण द्रव्य नहीं आ जाता; किन्तु उत्पाद पर्याय रूप है, व्यय भी पर्याय रूप है और ध्रुवता भी पर्याय रूप है, इसलिये उत्पाद, व्यय और ध्रुव ये तीनों तीन पर्यायों हैं (यहाँ “पर्याय” का अर्थ द्रव्य का ही एक अंश समझना।) पर्याय अंश है और द्रव्य अंशी है। द्रव्य समुदायी है और वह पर्यायों के समुदाय से बना है। जिस प्रकार “समुदायी वृक्ष स्कंध, मूल और शाखाओं के समुदायस्वरूप होने से स्कंध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही भासित होता है; उसीप्रकार समुदायी द्रव्य पर्यायों के समुदायस्वरूप होने से पर्यायों द्वारा आलम्बित ही भासित होता है।” तथा स्कन्ध, मूल और डालियाँ - ये तीनों वृक्ष के अंश हैं और ये तीनों मिलकर पूरा वृक्ष है; उसीप्रकार पर्यायों वस्तु के अंश हैं, वे पर्यायों वस्तु के आश्रय से ही हैं। वस्तु के अंश हैं, वस्तु से पृथक् नहीं हैं।

पहले १००वीं गाथा में तो द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ परस्पर अविनाभावी हैं - ऐसा सिद्ध किया। अब यहाँ यह सिद्ध करते हैं कि वे उत्पाद, व्यय और ध्रुव किसके हैं - द्रव्य के या पर्याय के ?

उत्तर :- वे उत्पाद, व्यय और ध्रुव पर्यायों के हैं, द्रव्य के नहीं हैं। और वे उत्पाद, व्यय, ध्रुव वाली तीनों पर्यायों (अंश) द्रव्य के ही आश्रय से हैं और उन पर्यायों के अवलम्बन से उत्पाद, व्यय, ध्रुव हैं।

“पर्यायों उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा अवलम्बित होती हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों के आश्रित हैं; क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं।” पर में नहीं हैं और पर के भी नहीं हैं, बल्कि वे अपनी पर्याय के ही हैं। उत्पाद पर्याय है, व्यय भी पर्याय है और ध्रुवता भी पर्याय ही हैं। इन तीनों अंशों के समुदायस्वरूप वस्तु है। जिस समय सम्यग्दर्शन हुआ उस समय के उत्पाद-व्यय-ध्रुव इस प्रकार है :- उस समय सम्यक्त्वपर्याय की अपेक्षा से उत्पाद है, कहीं सम्पूर्ण आत्मा उत्पन्न नहीं हुआ है; मिथ्यात्वपर्याय की अपेक्षा से व्यय है, कहीं सम्पूर्ण आत्मा व्यय को प्राप्त नहीं हुआ है और अखण्ड प्रवाह में वर्तते हुए ध्रुव अंश की अपेक्षा से ध्रुवता है; कहीं सम्पूर्ण आत्मा ध्रुव नहीं है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रुव सम्पूर्ण द्रव्य के नहीं हैं; किन्तु द्रव्य के एक-एक अंश हैं, और वे अंश द्रव्य के ही हैं; दूसरे की पर्याय के कारण या दूसरे की पर्याय में वे अंश नहीं हैं।

प्रश्न :- विकार आत्मा का स्थायी स्वभाव नहीं है; इसलिये उस अंश का उत्पाद पर में होता होगा?

उत्तर :- तो कहते हैं कि नहीं; उस विकार का उत्पाद भी आत्मा की पर्याय के आश्रित ही है और वह पर्याय आत्मद्रव्य के आश्रय से बनी हुई है; कर्म के उदय के आश्रय से नहीं। विकारी पर्याय भी सवज्ञेय का अंश है। विकारी अंश को यदि पर का अथवा पर के कारण हुआ कहा जाये तो

सम्पूर्ण स्वज्ञेय सिद्ध नहीं होता। एक अंश को निकाल देने से आत्मा ही सिद्ध नहीं होगा और यदि उस विकार के उत्पाद को अंश का (पर्याय) न मानकर द्रव्य ही माना जाये तो सम्पूर्ण द्रव्य ही विकारमय हो जायेगा; इसलिए विकाररहित स्वभाव है वह स्वज्ञेय रूप से नहीं रहेगा और विकार दूर होकर अविकारीपना भी नहीं हो सकेगा।

उत्पाद, व्यय, ध्रुवपर्याय रूप होते हैं, पर्याय द्रव्य में होती है। इसप्रकार सबको एक द्रव्य में ही समा दिया है।

घट, पिण्ड और मिट्टीपना - इन तीनों अंशों के समुदायस्वरूप मिट्टी है। इन तीनों अंशों के बिना मिट्टी सिद्ध नहीं हो सकती। उसमें उत्पाद घट के आश्रय से है और ध्रुवता मिट्टीपने के आश्रय से है तथा घट, पिण्ड और मिट्टीपना ये तीनों अंश मिट्टी के आश्रय से हैं। इसप्रकार एक मिट्टी में सब समा जाते हैं।

प्रश्न :- जीव में जो रागादि उदयभाव होते हैं वे किसके हैं? द्रव्य के, पर्याय के या पर के?

उत्तर :- वे उदयभाव पर के नहीं हैं, द्रव्य के भी नहीं हैं; किन्तु वे आत्मा की उस समय की पर्याय (अंश) के हैं। उदयभाव स्वज्ञेय की पर्याय हैं।

उत्पाद, व्यय, ध्रुव - तीनों एक साथ हैं; यह बात १००वीं गाथा में सिद्ध की है। यहाँ १०१वीं गाथा में यह कह रहे हैं कि उत्पाद, व्यय, ध्रुव अंश (पर्याय) हैं और वे पर्याय (अंश) द्रव्य की हैं। ऐसा कहकर उन तीनों को एक द्रव्य में ही समा दिया है।

किसी एक भाव का उत्पाद होने से सम्पूर्ण द्रव्य ही नाश को प्राप्त नहीं होता, किन्तु वही पर्याय नष्ट होती है, और वह पर्याय द्रव्य के आश्रित है। परिणामों के प्रवाह में ध्रुवता रूप से द्रव्य ही ध्रुव नहीं है, किन्तु अंश की

अपेक्षा से ध्रुवता है, ध्रुवता भी द्रव्य का एक अंश है, सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है, किन्तु वह ध्रुव अंश द्रव्य के आश्रय से है।

इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव अंश हैं और उन अंशों का समूह द्रव्य है। इसप्रकार “द्रव्य” में सब समा जाते हैं।

उत्पाद, व्यय और ध्रुव द्रव्य के आश्रय से नहीं हैं अर्थात् द्रव्य के ही उत्पाद, व्यय या ध्रुव नहीं हैं, परन्तु पर्याय के हैं, और वे पर्याय द्रव्य की हैं। उत्पाद, व्यय अथवा ध्रुव में से किसी एक में ही सम्पूर्ण द्रव्य का समावेश नहीं हो जाता, किन्तु वे तो एक-एक पर्याय रूप हैं। उत्पाद सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं बतलाता, किन्तु उत्पन्न होनेवाली पर्याय को बतलाता है, व्यय भी सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं बतलाता, किन्तु पूर्व पर्याय को बतलाता है, तथा ध्रुव भी सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं बतलाता, किन्तु वह पर्याय को (अंश को) ही बतलाता है। इसप्रकार वे प्रत्येक एक-एक पर्याय को बतलाते हैं और उन तीनों पर्यायों का समूह द्रव्य को बतलाता है, द्रव्य पर्यायों के समूहरूप है।

किसी भी द्रव्य का कोई भी एक समय लो तो उसमें उत्पाद, व्यय और ध्रुव - तीनों एक साथ पर्यायों के आश्रय से हैं। मात्र उत्पाद में, व्यय में, या ध्रुव में सम्पूर्ण द्रव्य आ जाता है, इसलिये वे द्रव्य के आश्रय से नहीं, किन्तु पर्यायों के आश्रय से हैं - ऐसा कहा है। उत्पादधर्म किसी पर्याय के आश्रय से है, व्ययधर्म भी किसी पर्याय के आश्रय से है और ध्रौव्यत्वरूप धर्म भी किसी पर्याय (अंश) के आश्रय से है, इसलिये उन्हें पर्यायों के धर्म कहे हैं, और पर्याय द्रव्य के आश्रय से हैं। इसप्रकार अभेदरूप से द्रव्य में सब समा जाते हैं।

इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव अंशों के आश्रय से हैं और वे अंश द्रव्य का आलम्बन लेते हैं। उत्पाद भी अंश का है, व्यय भी अंश का है और ध्रुवता भी अंश की है, उस एक-एक अंश में सम्पूर्ण वस्तु नहीं समा

जाती, किन्तु अंशों के पिण्डरूप वस्तु है। वस्तु अंशी है और उत्पादादि से आलम्बित पर्यायों उसके अंश हैं। यह बात वृक्ष का उदाहरण देकर समझाते हैं - बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भाँति। जिसप्रकार अंशी वृक्ष के बीज, अंकुर और वृक्षत्वस्वरूप तीन अंश निज धर्मों द्वारा आलंबित एक ही साथ भासित होते हैं, उसीप्रकार अंशी द्रव्य के नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और अवस्थित भाव - ऐसे भंग-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप तीन अंश निज धर्मों द्वारा आलंबित एक ही साथ भासित होते हैं।

वस्तु में उत्पाद भी एक अंश है, व्यय भी एक अंश है और ध्रुवता भी एक अंश है। उस एक-एक अंश में सम्पूर्ण वस्तु का समावेश नहीं हो जाता, अर्थात् द्रव्य की ही उत्पत्ति, द्रव्य का ही नाश या द्रव्य की ही ध्रुवता नहीं है। जिस प्रकार एक वृक्ष में बीज, अंकुर और वृक्षत्व ऐसे तीन अंश हैं, उनमें बीज-अंश का व्यय, अंकुर अंश का उत्पाद और वृक्षत्व - अंश की ध्रुवता है, वे तीनों अंश मिलकर झाड़ का (वृक्ष का) अस्तित्व है। उसीप्रकार आत्मवस्तु में - सम्यक्त्व अंश का उत्पाद, मिथ्यात्व-अंश का व्यय और श्रद्धापने की ध्रुवता है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य अंशों के हैं, अंशी के नहीं हैं। द्रव्य की अपेक्षा से ही उत्पाद नहीं हैं, किन्तु द्रव्य में उत्पन्न होनेवाले भाव की अपेक्षा से उत्पाद है, द्रव्य की अपेक्षा से ही व्यय नहीं है, किन्तु पूर्व के नष्ट होनेवाले भाव की अपेक्षा से व्यय है और सम्पूर्ण द्रव्य की ही अपेक्षा से ध्रुवता नहीं है, किन्तु द्रव्य अखण्ड स्थायी भाव की अपेक्षा से (द्रव्यत्व की अपेक्षा से) ध्रुवता है। इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, प्रत्येक अंश के आश्रित हैं। जिस क्षण वस्तु नवीन भाव से उत्पन्न होती है उसी क्षण पूर्व भाव से व्यय को प्राप्त होती है और उसी क्षण द्रव्यरूप से ध्रुव रहती है, - इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ ही अंशों के अवलम्बन से

हैं, किन्तु अंशी के ही उत्पाद, व्यय अथवा ध्रुव नहीं हैं। (यहाँ ध्रुव को भी अंश की अपेक्षा से पर्याय कहा है, किन्तु उसमें द्रव्य का सामान्य भाग है; परन्तु मात्र उस ध्रुव में ही सम्पूर्ण वस्तु का समावेश नहीं होता। इसलिए उसे भी अंश कहा है और अंश होने से पर्याय कहा है। इस अपेक्षा से ध्रुवता भी पर्याय के आश्रित कही गई है।

प्रश्न :- यदि अंशी-वस्तु के ही उत्पाद, व्यय या ध्रुव माने जायें तो उसमें क्या दोष आता है?

उत्तर :- यदि पूर्व के अंश का व्यय न मानकर द्रव्य का ही व्यय माना जाये तो एक तो समस्त द्रव्य एक क्षण में नाश को प्राप्त हो जायेगा अर्थात् सत् का ही नाश हो जायेगा।

यदि मिथ्यात्वपर्याय का नाश न मानकर आत्मद्रव्य का ही नाश माना जाये तो आत्मा एक क्षण में ही नाश को प्राप्त हो जायेगा, पहले क्षण के सत् का दूसरे क्षण ही नाश हो जायेगा। अंश का नाश होता है, उसके बदले अंशी का ही नाश मानने से एक क्षण में ही समस्त द्रव्यों का अभाव हो जायेगा अथवा सत् पदार्थों का ही नाश हो जायेगा।

द्रव्य का ही व्यय मानने से प्रथम तो द्रव्यों का सर्वथा अभाव सिद्ध होगा - यह दोष आता है और दूसरे भाव का अभाव हो जायेगा, इसलिये द्रव्य का व्यय नहीं है, किन्तु मात्र द्रव्य के अंश का व्यय है। और वह व्यय अंश अंशी का है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव अंशों के आश्रय से हैं और वे अंश अंशी पदार्थ से आश्रित हैं, किन्तु किसी द्रव्य का कोई अंश दूसरे द्रव्य के आश्रित नहीं हैं और विकारी या निर्विकारी किसी भी भाव का उत्पाद-व्यय भी दूसरे के आश्रित नहीं है, किन्तु उस-उस पर्याय के ही आश्रित है। राग का उत्पाद कर्म के आश्रय से नहीं है, किन्तु उससमय की पर्याय के आश्रित है। इस जीव के मिथ्यात्व का व्यय देव-गुरु के

आश्रित नहीं है, किन्तु पूर्वपर्याय के आश्रित ही है। इसप्रकार पर्यायें स्वयं ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव का आश्रय हैं।

प्रश्न :- यदि अंश का उत्पाद न मानकर द्रव्य का ही उत्पाद माना जाये तो क्या दोष है?

उत्तर :- यदि द्रव्य का ही उत्पाद माना जाये तो क्षणिक पर्याय ही द्रव्य हो जायेगी और प्रतिक्षण नवीन-नवीन द्रव्य ही उत्पन्न होने लगेगा। द्रव्य को अनन्त पर्यायों में से प्रत्येक पर्याय स्वयं द्रव्य हो जायेगी इसलिए एक द्रव्य को ही अनन्त द्रव्यपना आयेगा अथवा तो वस्तु के बिना असत् का ही उत्पाद होने लगेगा। मिट्टी में घट अवस्था उत्पन्न होती है, किन्तु मिट्टी स्वयं उत्पन्न नहीं होती, उसीप्रकार वस्तु में उसके नवीन परिणाम उत्पन्न होते हैं, किन्तु वस्तु स्वयं उत्पन्न नहीं होती। एक अंश के उत्पाद को ही यदि द्रव्य माना जाये तो एक पर्याय स्वयं ही सम्पूर्ण हो जायेगी, इसलिये द्रव्य की अनन्त पर्यायें ही अनन्त द्रव्य हो जायेंगे। इसप्रकार एक द्रव्य को ही अनन्त द्रव्यपना हो जायेगा - यह दोष आता है। हाँ, एक द्रव्य में अनन्त गुण होते हैं और एक द्रव्य की अनन्त पर्यायें भी होती हैं, किन्तु स्वयं द्रव्य नवीन उत्पन्न नहीं होता। यदि द्रव्य स्वयं उत्पन्न हो तो असत् की ही उत्पत्ति होगी। इसप्रकार द्रव्य का ही उत्पाद मानने में दो दोष आते हैं। प्रथम तो, एक ही द्रव्य अनन्त द्रव्यरूप हो जायेगा, और दूसरे, असत् की ही उत्पत्ति होगी। इसलिये उत्पाद द्रव्य का ही नहीं है, किन्तु उत्पन्न होने वाले भाव का है और उस उत्पन्न होनेवाले भावरूप अंश द्रव्य का है।

प्रश्न :- यदि सम्पूर्ण द्रव्य को ही ध्रुव माना जाये तो क्या दोष आयेगा?

उत्तर :- यदि सम्पूर्ण द्रव्य को ही ध्रुव मान लिया जाये तो क्रमशः होनेवाले उत्पाद-व्यय भावों के बिना द्रव्य का ही अभाव हो जायेगा,

अथवा द्रव्य को क्षणिकपना हो जायेगा। वस्तु मात्र ध्रुवरूप नहीं है, किन्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है, उसके बदले मात्र ध्रुव अंश को ही वस्तु मान लिया और अंशी को नहीं माना तो द्रव्य क्षणिक हो जायेगा। इसलिये वस्तु ही ध्रुव नहीं है, किन्तु वस्तु का एक अंश ध्रुव है।

एक ही समय में उत्पाद-व्यय होते हैं, किन्तु वे उत्पाद-व्यय एक ही समय की पर्याय के नहीं हैं। एक समय में उत्पाद वर्तमान पर्याय का है और व्यय पूर्व पर्याय का है। एक ही समय में जिसका व्यय है उसका उत्पाद नहीं है और जिसका उत्पाद है उसका व्यय नहीं है। उत्पाद से आलंबित पृथक् पर्याय है और व्यय से आलंबित पृथक् पर्याय है, किन्तु उस उत्पाद व्यय दोनों का काल एक ही है। जिससमय जिस पर्याय का व्यय है उस समय उस पर्याय का उत्पाद नहीं है और जिस समय जिस पर्याय का उत्पाद, दूसरी का व्यय और तीसरी का उत्पाद, - इसप्रकार होने से वे क्रमशः होनेवाले भाव हैं। जब बीज का व्यय हो तब अंकुर का उत्पाद होता है, इसलिये बीज और अंकुर क्रमशः होनेवाले भाव हैं, उनके बिना वृक्ष की ध्रुवता नहीं रहती। उत्पाद-व्यय के बिना क्रमशः होनेवाले भाव नहीं बन सकते और क्रमशः होनेवाले भावों के बिना द्रव्य का अस्तित्व नहीं रह सकता। जिसने मात्र द्रव्य का ही ध्रुव मान लिया है उसके द्रव्य में पूर्वपर्याय का व्यय और पीछे की पर्याय का उत्पाद - ऐसे क्रमशः होनेवाले भावों के बिना उसका ध्रुवतत्त्व कहाँ स्थिर रहेगा? इसलिये उसे ध्रुव द्रव्य का ही अभाव हो जायेगा अथवा उसके मन में द्रव्य क्षणिक ही हो जायेगा। इसप्रकार द्रव्य का ही ध्रुव मानने में भी दोष आता है। ध्रुवता द्रव्य की ही नहीं है; किन्तु द्रव्य के स्थायी अंश की है।

उत्पाद, व्यय और ध्रुव - यह तीनों एक साथ हैं, किन्तु वे अंशों के हैं, द्रव्य के नहीं।

उत्पाद, व्यय और ध्रुव इन तीनों को एक साथ न मानकर मात्र उत्पाद को, व्यय को या ध्रुव को ही माने तो कौनसे दोष आते हैं, वह बात १००वीं गाथा में बतलाई थी।

यहाँ, द्रव्य का ही उत्पाद, द्रव्य का ही व्यय और द्रव्य की ही ध्रुवता माने तो कौन से दोष आते हैं – यह बात १०१वीं गाथा में बतलाया है।

इस (१०१वीं) गाथा में आचार्य देव को यह सिद्ध करना है कि उत्पाद, व्यय और ध्रुव ये द्रव्य से पृथक् कोई पदार्थ नहीं हैं, किन्तु द्रव्य में ही उन सबका समावेश हो जाता है।

- (१) यदि द्रव्य का ही उत्पाद मान लिया जाये तो व्यय और ध्रुव का समावेश द्रव्य में नहीं होगा।
- (२) यदि ध्रुव का ही व्यय मान लिया जाये तो उत्पाद और ध्रुव का समावेश द्रव्य में नहीं होगा।
- (३) यदि द्रव्य का ही ध्रौव्य मान लिया जाये तो उत्पाद और व्यय का समावेश द्रव्य में नहीं होगा।
- (४) इसलिये, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा पर्याय आलंबित हो, जिससे यह सब एक ही द्रव्य हो।

आचार्यदेव ने न्याय और युक्तिपूर्वक वस्तुस्वरूप सिद्ध किया है। द्रव्य स्वयं ही उत्पन्न नहीं होता, स्वयं ही नाश को प्राप्त नहीं होता और स्वयं ही ध्रुव नहीं रहता; किन्तु उनके अंश का उत्पाद है, अंश का व्यय है और अंश की ध्रुवता है। इसलिये वे उत्पाद व्यय और ध्रौव्य अंशों के (पर्यायों के) हैं और वे पर्यायें द्रव्य की ही हैं। इससे सब एक ही द्रव्य है।